RNI Reg. No. HARHIN/2015/63352

पशुधन ज्ञान

वर्ष : 9 अंक : 01 जनवरी, 2023 अर्धवार्षिक, हिसार For Free Circulation only

प्रकाशक

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय

हिसार - 125004 (हरियाणा)

AHC

गाय और भैंस का दूध बढ़ाने के लिए मिनिरल मिक्सर

Nutri-Diet

Vet. Mineral Mixture

✓ ज्यादा दूध ✓ ज्यादा फैट ✓ ज्यादा एस.एन.एफ.

- दुधारू पशुओं में अतः कृमियों के संक्रमण एवं थनेला रोग से बचाव।
- दुधारू पशु से सम्पूर्ण दूध निकालने एवं जल्दी पावसने में सहायक।
- पाचन क्षमता बढ़ाकर अधिक दुग्ध उत्पादन एवं फैट प्रतिशत को सुनिश्चित करता है।
- पशु चारे में उपलब्ध आवश्यक तत्वों को अवशोषित कर दुग्ध उत्पादन में वृद्धि।
- दुग्ध उत्पादन के साथ गर्भाशय की कार्य क्षमता को भी बढ़ाता है।

flipkart.com

सभी मेडीकल स्टोर पर उपलब्ध, फोटो मिलाकर खरीदें

अधिक दूध - अधिक आय - स्वस्थ पशु

Pack of 1kg. 5kg. 25kg.

More Information Contact No. 8059537000, 9896957711

डॉ. विनोद कुमार वर्मा
कुलपति
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

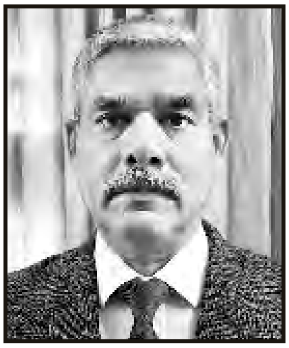

संदेश

हरियाणा कृषि प्रधान राज्य होने के साथ-साथ देश का अग्रणी पशुपालक राज्य भी है। कृषि एवं संलग्न क्षेत्रों में, पशुपालन क्षेत्र का आर्थिक विकास में योगदान सबसे ज्यादा है। आज के बदलते आर्थिक परिवेश में उच्च प्रोटीन युक्त आहार की मांग बढ़ रही है जिसे पूरा करने के लिए पशुपालन क्षेत्र पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। साथ ही साथ किसानों की आय व आजीविका दोगुनी करने में भी पशुपालन क्षेत्र की अहम भूमिका है। बढ़ती जनसंख्या के कारण कम होती कृषि जोत ने पशुपालन को अत्याधिक प्रासंगिक बना दिया है।

हरियाणा राज्य देश के दुग्ध उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके साथ-साथ मांस उत्पादन, अंडा उत्पादन, मछली पालन व पशुपालन से जुड़े अन्य व्यवसायों में भी काफी वृद्धि हो रही है।

लुवास अपने वैज्ञानिक शोधों के द्वारा हमेशा से पशुओं की उत्पादक क्षमता बढ़ाने, उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ाने और बीमारियों से बचाव जैसे विषयों पर नवीनतम जानकारियों एवं तकनीकों को पशुपालकों तक पहुँचाने का कार्य कर रहा है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका वैज्ञानिकों, बुद्धिजीवियों एवं पशुपालकों को ज्ञान के माध्यम से जोड़ने का कार्य करती है। लुवास एवं अन्य क्षेत्रों में होने वाले पशुओं से संबंधित शोध कार्यों को विस्तार शिक्षा निदेशालय के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया जाता है। पशुधन ज्ञान पत्रिका के प्रकाशन के अवसर पर विस्तार शिक्षा निदेशक एवं पत्रिका के संपादक एवं वैज्ञानिकों को बधाई देता हूँ एवं आशा करता हूँ कि पत्रिका अपने उद्देश्य में सफल हो।

(विनोद कुमार वर्मा)

प्रो. (डॉ.) मनोज कुमार रोज
निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय,
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

संदेश

ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालन सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव का महत्वपूर्ण अंग है। पशुपालन प्राचीन काल से ही हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। पशुधन हमें खाद्य उत्पादों के अलावा रोजगार तथा खेती के कार्यों के लिए ऊर्जा, खाद्य आदि उपलब्ध करवाता है। दुग्ध उत्पादन का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में गेहूँ, धान और गन्ना जैसे प्रमुख पदार्थों से भी ज्यादा हिस्सा है।

हरियाणा पूरे भारतवर्ष में दुग्ध उत्पादन में अग्रणी राज्यों में से एक है एवं प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता में पंजाब के बाद दूसरे स्थान पर है। पशुधन में उच्चतर उत्पादों की प्राप्ति के लिए संतुलित आहार, नस्ल सुधार, बेहतर स्वास्थ्य तथा बीमारियों का नवीनतम तकनीक द्वारा निदान और इलाज आदि ऐसे प्रांसगिक विषय हैं जिनकी जानकारी पशुपालकों तक समय-समय पर पहुंचाना अति आवश्यक है। राज्य में कुल दुग्ध उत्पादन का लगभग 84 प्रतिशत हमें भैंसों एवं 15 प्रतिशत गायों से प्राप्त होता है। राज्य एवं देश की बढ़ती जनसंख्या, खाद्य सुरक्षा एवं संतुलित आहार के प्रति जागरूकता को ध्यान में रखते हुए पशुपालन क्षेत्र में रोजगार की अपार संभावना है। ग्रामीण क्षेत्रों में युवाओं में डेयरी, मत्स्य पालन, सुअर पालन, मुर्गी पालन एवं भेड़-बकरी पालन में बढ़ती रूचि एवं रोजगार की संभावनाओं को ध्यान में रखकर विस्तार शिक्षा निदेशालय पशुधन के विकास से सम्बन्धित नवीन जानकारियों एवं तकनीकों को पशुधन ज्ञान पत्रिका के माध्यम से पशुपालकों तक पहुंचाने का कार्य करता है।

हरियाणा प्रदेश ने पशुपालन के क्षेत्र में बहुत तरक्की की है जिसमें प्रदेश के पशु वैज्ञानिकों और पशुपालक किसानों का बहुत बड़ा योगदान है। अब विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका का वर्ष 2020 का द्वितीय अंक पशुधन व पशु उत्पाद से संबंधित सूचनाएं और ज्ञान पशुपालकों के घर-घर तक पहुंचाने का कार्य करेगा। मैं विश्वविद्यालय के सभी वैज्ञानिकों और अधिकारियों का धन्यवाद करता हूँ एवं पशुपालकों के लिए किए जाने वाले इस प्रयास की सराहना करता हूँ।

(मनोज कुमार रोज)

सम्पादक की कलम से...

पशुपालक भाइयों आज के समय में पशुपालन एक उद्यम का रूप ले चुका है। पशु उत्पादों जैसे दूध, दही, लस्सी आदि की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ऐसे में पशुपालक एक उद्यमी की तरह सोच रखकर पशुपालन व्यवसाय से अधिकतम लाभ ले सकते हैं। बदलते परिवेश में पशुओं में नए-नए प्रकार के रोग एवं समस्याएं हो रही है। ऐसे में हमें पशुपालन संबंधी नवीन जानकारी एवं तकनीकों के बारे में अवगत होते रहना चाहिए।

पशुपालकों को सरल एवं आसान भाषा में यह जानकारी पशुधन पत्रिका के माध्यम से दी जा रही है। हमारा उद्देश्य है कि पशुपालक पारंपरिक ज्ञान के साथ-साथ वैज्ञानिक विधि की भी जानकारी रखें एवं जरूरत पड़ने पर उसका उपयोग करें।

पशुधन ज्ञान की पत्रिका में पशुपालन में लाभदायक सिद्ध होने वाली हाइड्रोपोनिक्स, ड्रमसाइलेज जैसे आधुनिक जानकारियों से साथ-साथ मिलावटी दूध की पहचान, विभिन्न मौसमों में पशुओं की देखभाल, घातक बीमारियों से बचाव, गर्भकाल में पशुओं की देखभाल आदि विशयों पर बहुत सी नवीन जानकारी दी गई है। पशुपालकों से निवेदन है कि इसमें बताई गई दवाइयों से संबंधित जानकारी का उपयोग करने से पहले पशु चिकित्सक की सलाह अवश्य लें।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका पशुपालकों एवं अन्य बुद्धिजीवियों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी। मैं इस पुस्तिका के नवीन अंक के प्रकाशन पर कुलपति लुवास, विस्तार शिक्षा निदेशक, वैज्ञानिकगण एवं सम्पादक मंडल के सदस्यों का धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ।

(देवेन्द्र सिंह)

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठांक
1.	लम्पी स्किन डिजीज : गोजातीय पशुओं का गांठदार चमड़ी रोग	के.एल. दहिया एवं यशवन्त सिंह	1
2.	हरे चारे के लिए रिजका की खेती	सतपाल एवं अलका रानी	4
3.	जैविक डेरी फार्मिंग की विशेषताएँ	रेखा दहिया एवं राजेन्द्र सिंह	6
4.	पशुओं से मनुष्य में होने वाली कुछ महत्वपूर्ण बीमारियाँ	रश्मि, रविदत्त एवं सुखबीर रावीश	8
5.	भारत में जापानी बटेर की खेती की वर्तमान स्थिति, संभावनाएँ और बाधाएँ	सरिता कौशल एवं शिवेंद्र अग्रवाल	11
6.	मिल्क फीवरः लक्षण एवं रोकथाम	कमलदीप, अनिका मलिक एवं सरिता	13
7.	नवजात गौ/भेड़–बकरी दस्त लक्षण एवं बचाव	अनिका मलिक, कमलदीप एवं अनिता दलाल	14
8.	प्रयोगशाला परीक्षण हेतु जैव पदार्थ का एकत्रीकरण	अनिका मलिक, कमलदीप एवं रचना	15
9.	पशुओं में रोग प्रतिरोधक क्षमता : एक परिचय	प्यारेलाल, नरेन्द्र सिंह राठौड़ एवं अमित कुमार पाण्डे	16
10.	पशुओं में यूरिया विषाक्तता : बचाव एवं उपचार	अतुल शंकर अरोड़ा	18
11.	पशुओं में मूत्र एवं मूत्र मार्ग की जाँच सम्बंधित जानकारी	मनीष शर्मा, बाबू लाल जांगिड़ एवं तरुण कुमार	20
12.	गाँठदार त्वचा रोग : बचाव एवं रोकथाम	अमनदीप, दिपिन चंद्र यादव एवं देवेंद्र सिंह बिढाण	22
13.	मवेशियों में तीन दिवसीय ज्वर (इफिमेरल बुखार)	राजेंद्र यादव, अमित सांगवान एवं नीलेश सिंधु	24
14.	शीत लहर के दौरान पशुधन के लिए प्रबंधन गतिविधियाँ	दिव्या अग्निहोत्री, तरुण कुमार एवं स्नेहलता चौहान	26
15.	स्वच्छ दूध उत्पादन का महत्व, उद्देश्य एवं उपाय	राजेंद्र यादव, अमित सांगवान एवं पंकज कुमार	27
16.	बटेर पालन एवं मइस की उपयोगिता	महावीर चौधरी, विक्रम जाखड़ एवं सरिता	29
17.	घोड़ियों में होने वाली प्रजनन संबंधित बीमारियाँ	अनुपमा, रविदत्त एवं सुखबीर रावीश	31
18.	पशुओं में जेर न डालने की समस्या	सुखबीर रावीश एवं रविदत्त	33
19.	पशुओं में गर्भाधान न होने के कारण एवं बचाव	सुजाता जिनागल एवं रविदत्त	35
20.	दुधारू पशुओं में प्रसव के उपरांत बिमारियाँ और देखभाल	प्रदीप, रविदत्त एवं सुखबीर रावीश	37
21.	प्रसव के पूर्व, दौरान एवं प्रसव के पश्चात् मादा पशु का रखरखाव	प्रदीप, ज्ञान सिंह एवं संदीप कुमार	39
22.	भेड़ों में कृत्रिम गर्भाधान का महत्व	तपेन्द्र कुमार, प्रमोद कुमार एवं माया मेहरा	41
23.	डेयरी फार्मिंग को फायदेमंद बनाने के लिए आवश्यक है कि पशु हर साल ब्याए	सुजॉय खन्ना एवं अनीता गांगुली	44
24.	डेयरी पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान	सुजॉय खन्ना एवं अनीता गांगुली	45
25.	भैंसों में फास्फोरस की कमी के कारण गठिया बाय रोग	गौरी चंद्रात्रे	46
26.	मिलावटी (अपमिश्रित) दूध के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव	रेखा दहिया एवं राजेन्द्र सिंह	47

प्रकाशकः

प्रो. (डॉ.) मनोज कुमार रोज

निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय

हिसार–125004 (हरियाणा)

सम्पादकः

डॉ. देवेन्द्र सिंह

सम्पादकीय मण्डलः

डॉ. वन्दना भनोट

डॉ. दिपिन चन्द्र यादव

डॉ. राजेश कुमार

प्रकाशकः प्रो. (डॉ.) मनोज कुमार रोज, निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय, लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार ने डॉ. देवेन्द्र सिंह के संपादन में **डोरेक्स ऑफसैट प्रिन्टर्स, हिसार** से लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के लिए मुद्रित करवा कर जनवरी, 2023 को प्रकाशित किया।

निर्देशः इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा लेखकों द्वारा पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत की गई हैं। सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक तथा लेखकों के द्वारा दी गई जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। ब्राँडेड दवाइयों व उत्पादों के नाम केवल उदाहरण के रूप में दिए हैं तथा इन्हें विश्वविद्यालय की ओर से सिफारिश न माना जाए। पाठकों को यह सलाह दी जाती है कि किसी भी जानकारी को प्रयोग में लाते समय विशेषज्ञों की सलाह लें। किसी भी त्रुटि के लिए सम्पादक से सम्पर्क किया जा सकता है। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र हिसार न्यायालय होगा।

लम्पी स्किन डिजीज : गोजातीय पशुओं का गांठदार चमड़ी रोग

के.एल. दहिया[1]* एवं यशवन्त सिंह[2]

[1]पशु चिकित्सक, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, हरियाणा

[2]पशुधन फार्म परिसर पशुधन उत्पादन प्रबंधन विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय, बठिंडा, (पंजाब)

लम्पी स्किन डिजीज (एलएसडी) गौजातीय पशुओं में चमड़ी का रोग है जो लम्पी स्किन डिजीज वायरस के कारण होता है। यह पॉक्सविरिडे परिवार के कैप्रिपोक्सवायरस जीनस का एक सदस्य है। यह गौवंश और भैंसों को प्रभावित करने वाली एक संक्रामक, छूत और आर्थिक महत्व की बीमारी है। यह त्वचा और शरीर के अन्य भागों पर गांठदार वृद्धि की विशेषता वाले मवेशियों की कभी–कभी घातक बीमारी के कारण त्वचा के घावों का कारण बनता है। आमतौर पर, बुखार, भूख न लगना, और मुंह, नाक, थन, जननांग, मलाशय की त्वचा और श्लेष्मा झिल्ली पर गांठे बनना, दूध उत्पादन में कमी, गर्भपात, बांझपन और कभी–कभी मृत्यु इस रोग के लक्षण हैं। द्वितीयक जीवाणु संक्रमण होने से प्रभावित पशुओं की स्थिति और खराब हो जाती है। गांठदार चमड़ी का रोग आमतौर पर दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका में पाया जाता है, लेकिन 1970 के दशक में यह महाद्वीप के माध्यम से उत्तर–पश्चिम में उप–सहारा पश्चिम अफ्रीका में फैल गया और 2000 के बाद से, यह भारत सहित मध्य–पूर्व के देशों के कई देशों में फैल गया है।

प्रभावित प्रजातियां

मुख्य रूप से यह रोग गौवंश में अधिक पायी जाती है लेकिन भैंसें भी इस रोग से प्रभावित होती हैं। सभी उम्र के मवेशियों और दोनों लिंगों में संक्रमण की आशंका होती है हालांकि कभी–कभी व्यस्क पशुओं को केवल मामूली रूप से प्रभावित करती है, जबकि उनके बच्चों में 24 से 48 घंटे पहले अधिक स्पष्ट और गंभीर लक्षण हो जाते हैं। देशी पशुओं की तुलना में विदेशीमूल के पशुओं जैसे कि हॉलस्टिन फ्रीज़ियन और संकर नस्ल के पतली चमड़ी और अधिक दूध उत्पादन वाले यूरोपीय डेयरी पशुओं में इस रोग का प्रकोप अधिक पाया जाता है। दुग्धोत्पादन अवधि के दौरान सबसे अधिक उत्पादन वाले समय में दुधारू पशु सबसे अधिक गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं।

*Corresponding author: drkldahiya@hotmail.com

कारक

यह रोग चेचक रोग से संबंधित लम्पी स्किन डिजीज वायरस (एलएसडीवी) के कारण होता है। परिवार पॉक्सविरिडे की उपपरिवार चॉर्डोपोक्सविरिने के कैप्रिपोक्सवायरस वंश का सदस्य है। इसके प्रतिकृति उपभेदों (प्रोटोटाइप स्ट्रेन) को नीथलिंग पॉक्सवायरस के रूप में जाना जाता है।

प्रसार

1. इस रोग का संचरण मुख्य रूप से गर्म और नम मौसम में रक्तोपरजीवी (हेमेटोफैगस) कीटों जैसे कि एडीज इजिप्टी विशेष रूप से मादा मच्छरों, स्टोमॉक्सिस मक्खियों और रिपिसेफलस (बूफिलस) चिचड़ियों के माध्यम से फैलता है।
2. एलएसडीवी को अनुपयुक्त रोगग्रस्त सांडों के वीर्य से अलग किया गया है और कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से एलएसडीवी का संचरण भी प्रयोगात्मक रूप से दिखाया गया है।
3. एलएसडी वायरस का संचरण आमतौर पर खाने–पीने के खुरलियों में संक्रमित लार के माध्यम से भी हो सकता है।
4. यह रोग संक्रमित दूध के माध्यम से दूध पीने वाले बछड़ों में फैलता है और संक्रमित गायों में चमड़ी के घावों वाले बछड़ों को जन्म देने की सूचना भी है।
5. टीकाकरण या इंजेक्शन के दौरान दूषित सुइयों के उपयोग से भी यह रोग अन्य पशुओं में फैल सकता है।

भारत में रोग की स्थिति

अगस्त 2019 में, भारत के ओडिशा राज्य में पहली बार एलएसडी से पीड़ित पशु पाये जाने के बाद से लेकर

अभी (मध्य 2022) तक यह बीमारी 22 राज्यों – उड़ीसा, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, तेलंगाना, पश्चिम बंगाल, केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, असम, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, गुजरात, मणिपुर, आंध्र प्रदेश, गोवा, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान और पंजाब और एक केंद्र शासित प्रदेश– अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में देखने में आई है।

सामाजिक–आर्थिक प्रभाव

आमतौर पर पशुओं में 10–20 प्रतिशत पशुओं में व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है और 1–5 प्रतिशत मृत्यु दर का कारण पाया गया है, कई शोधों में 100 प्रतिशत तक बीमारी से ग्रसित होने की सूचना भी है और ऐसी परिस्थितियों में पशुपालकों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य महत्व

आज तक, द वर्ल्ड ऑर्गनाइजेशन फॉर एनिमल हेल्थ द्वारा एलएसडी वायरस की पशुओं से मनुष्यों में फैलने की सूचना नहीं है लेकिन 2018–2019 के दौरान काहिरा और मिस्र में मवेशियों में एलएसडी के व्यापक प्रकोप के बाद मनुष्यों में एलएसडी वायरस की छिटपुट और मानवजनित संचरण पाया गया है।

रोगोद्भवन अवधि और नैदानिक लक्षण

- एलएसडी वायरस के शरीर में प्रवेश के बाद प्रारंभिक लक्षण बुखार होने तक रोग विकसित होने की अवधि 8–15 दिनों की होती है।
- रोग के शुरूआत में तेज बुखार (105.8^{o} फारेनहाइट) और लसीका ग्रंथियों (लिम्फ नोड्स) की सूजन होने के साथ–साथ संपूर्ण शरीर की चमड़ी, विशेष रूप से सिर, गर्दन, थुथन, थनों, गुदा और अंडकोष या योनिमुख के बीच के भाग (पेरिनेम) पर गांठों (नोड्यूल) के उभार बन जाते हैं। कभी–कभी पूरा शरीर गांठों से ढक जाता है। नोड्यूल परिगालित (नेक्रोटिक) और व्रणयुक्त (अल्सरेटिव) भी हो सकते हैं, जिससे मक्खियों द्वारा अन्य स्वस्थ पशुओं में संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है।
- दूध के उत्पादन में कमी होने के साथ पशु सुस्त, भूख न लगना, नाक से पानी गिरना (राइनाइटिस), आंखों का लाल होना (कंजंटिवाइटिस) और अतिरिक्त लार का गिरना भी देखा जा सकता है। बाद में नाक से बहने वाला स्राव सफेद/भूरा हो जाता है।
- गंभीर रूप से प्रभावित जानवरों में, परिगालित घाव श्वसन और जठरांत्र में भी विकसित हो सकते हैं।
- श्वसन पथ में होने से सांस लेने में कठिनाई होती है और पीड़ित पशु की 10 दिनों के अंदर–अंदर मृत्यु भी हो सकती है। गाभिन पशुओ में गर्भपात भी हो सकता हैं।

उपचार और नियंत्रण

- एलएसडी प्रभावित किसी भी पशु में लम्पी स्किन डिजीज होने पर अपने नजदीकी पशु चिकित्सालय से ईलाज करवायें।
- बीमार पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग करें और घावों के उपचार एवं मक्खियों को दूर करने के लिए स्प्रे व जीवाणुनाषक दवा लगाएं।
- लक्षणों के अनुसार रोग का उपचार किया जाता है।
- यदि पशुओं को बुखार है, तो बुखार ज्वरनाशक दवाई दी जा सकती है।
- आहार और पानी उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
- साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखें।
- एलएसडी के प्रसार को रोकने के लिए, संक्रमित क्षेत्र से जानवरों की आवाजाही पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगा दिया जाना चाहिए और उन क्षेत्रों से पशु उत्पादों को नहीं खरीदना चाहिए।
- रोग से प्रभावित क्षेत्रों में लोगों को नहीं आना–जाना चाहिए। पशुपालकों और प्रभावित पशुओं की देखभाल करने वालों को स्वस्थ पशुओं से दूर रहना चाहिए।
- गायों और भैंसों को उत्तरकाशी स्ट्रेन के साथ उपलब्ध गॉट पॉक्स के टीके, 4 महीने और उससे अधिक की उम्र की गायों और भैंसों में टीका लगवाने की सलाह दी जाती है। पीड़ित पशुओं को टीका नहीं लगाया जाना चाहिए।
- बीमारी को फैलाने वाले कीटों की आबादी को

नियंत्रित करने के लिए कीटनाशक, विकर्षक और अन्य रासायनिक पदार्थों का उपयोग करके किया जाना चाहिए।

घरेलु उपचार

1. 10 पान के पत्ते, 10 ग्राम काली मिर्च और 10 ग्राम नमक मिलाकर पेस्ट बना लें। अब इसमें गुड़ मिलाएं। इस एक खुराक को पहले दिन हर तीन घंटे में खिलाएं और बाद में अगले 2 सप्ताह तक दिन में तीन बार खिलाएं। या
2. लहसुन – 2 कलियां, धनिया – 10 ग्राम, जीरा – 10 ग्राम, तुलसी – 1 मुट्ठी, सूखी दालचीनी के पत्ते – 10 ग्राम, काली मिर्च – 10 ग्राम, पान के पत्ते – 5 नग, शलजम – 2 पीस, हल्दी पाउडर – 10 ग्राम, चिरता के पत्ते – 30 ग्राम, मरूआ तुलसी – 1 मुट्ठी, नीम के पत्ते – 1 मुट्ठी, बिल्व के पत्ते – 1 मुट्ठी और गुड़ – 100 ग्राम, आदि सभी को मिलाकर पेस्ट बनाकर गुड के साथ पहले दिन, हर तीन घंटे में खिलाएं और बाद में रोग ठीक होने तक दिन में दो बार खिलाएं।
3. त्वचा पर घाव होने पर हरित कुप्पी (अकालिफा इंडिका) के पत्ते –1 मुट्ठी, लहसुन – 10 कलियां, नीम के पत्ते – 1 मुट्ठी, हल्दी पाउडर – 20 ग्राम, मेहंदी के पत्ते – 1 मुट्ठी, तुलसी के पत्ते – 1 मुट्ठी मिलाकर पेस्ट बना लें। अब इसे 500 मिलीलीटर नारियल या तिल के तेल में मिलाकर उबाल लें और ठंडा होने के लिए रख दें। पेस्ट लगाने से पहले घावों को अच्छी तरह से साफ कर लें और फिर सीधे प्रभावित त्वचा पर लगाएं।
4. अगर घाव में कीड़े दिखाई दे तो पहले दिन सीताफल के पत्तों का पेस्ट या नारियल के तेल में कपूर मिलाकर लगाएं।

2019 से अब तक लम्पी स्किन डिजीज भारत के लगभग हर क्षेत्र में दस्तक दे चुकी है, जिससे पशुपालकों को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ रहा है। सही ज्ञानोपार्जन के साथ रोग फैलाने वाले कारकों (जैसे कि मक्खियों, मच्छरों और चिचड़ियों) का नियंत्रण और समय उपलब्ध टीकाकरण ही प्रभावषाली अस्त्र साबित हो सकता है।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

हरे चारे के लिए रिजका की खेती

सतपाल[1]* एवं अलका रानी[2]

[1]चारा अनुभाग,आनुवाशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग [2]वनस्पति विज्ञान एवं पादप कार्यिकी विभाग,
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

रिजका सबसे पुरानी खेती की जाने वाली चारा फसलों में से एक है। यह एक दलहनी, बारहमासी चारे वाली फसल है, जो बरसात के मौसम को छोड़कर पूरे वर्श कटिंग दे सकती है और सभी प्रकार के पशुधन, विशेष रूप से कामगार मवेशियों द्वारा इसे पसंद किया जाता है। दलहनी फसल होने के कारण मिट्टी में सुधार के लिए यह मूल्यवान फसल है और मिट्टी के स्वास्थ्य को खराब होने से बचाती है। एक ही फसल से 3–5 साल तक हरा चारा ले सकते हैं। जड़ें गहरी होने के कारण इसे पानी की कमी वाले क्षेत्रों में भी आसानी से उगाया जा सकता है हालांकि यह सिंचित परिस्थितियों में अच्छी फसल देने में सक्षम है। यह एक बारहमासी पौधा है जिसमें अनिश्चित वृद्धि की आदत होती है, जो मूल रूप से सीधा व शाखाओं में बंटा होता है और लगातार हरे चारे की आपूर्ति कर सकता है। रिजका देश के उत्तरी भागों में लंबी अवधि के लिए हरा चारा प्रदान करता है (नवंबर–जून) और पूरे वर्ष अन्य भागों में जहाँ सर्दियाँ ज्यादा कड़ाके की नहीं होती हैं। भारत में रिजका लगभग एक मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में बोई जाती है व 250 से 500 क्विंटल हरा चारा प्रति एकड़ प्रति वर्ष प्रदान करती है। ज्वार व बरसीम के बाद, रिजका भारत में तीसरी महत्वपूर्ण चारा फसल है।

पोशक तत्व : रिजका एक पोषक तत्वों से भरपूर चारा है जो न केवल पशुओं के स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है बल्कि दूध उत्पादन को भी बढ़ा सकता है। कई किस्में हैं लेकिन सिरसा में चारा अनुसंधान केंद्र में विकसित प्रकार 8 और 9 को उत्तर प्रदेश में अपनाने की सिफारिश की जाती है। इसमें परिपक्वता के अनुसार 18–25 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन और 25–35 प्रतिशत क्रूड फाइबर होता है। इसकी उच्च गुणवत्ता वाली प्रोटीन व विटामिन ए के कारण इसे मुर्गी पालन और सुअर पालन के फीड घटक के रूप में भी शामिल किया गया है। रिजका में सभी प्रकार के पशुधन के लिए उच्च स्वादिष्टता वाला पौष्टिक चारा प्रदान करता है।

किस्म का चुनाव :

सिरसा 8 : इसे चारा अनुसंधान केंद्र सिरसा (हरियाणा) में विकसित किया गया है। यह किस्म पंजाब, हरियाणा, दिल्ली व उत्तर प्रदेश में खेती के लिए उपयुक्त है। यह 140–160 क्विंटल प्रति एकड़ हरे चारे की औसत पैदावार देती है।

सिरसा टाइप 9 : इसे चारा अनुसंधान केंद्र, सिरसा द्वारा विकसित किया गया था। यह लगभग 5 साल की अवधि तक अच्छी तरह से हरा चारा दे सकती है। यह तेजी से बढ़ने वाली किस्म है जिसके पत्ते गहरे हरे होते हैं। हरे चारे की पैदावार 340 क्विंटल प्रति एकड़ और बीज की उपज लगभग 2 क्विंटल प्रति एकड़ होती है। यह उत्तर भारत विशेषकर जहां ठंडा तापमान रहता है पंजाब, हरियाणा, दिल्ली व उत्तर प्रदेश में उगाने के लिए सबसे उपयुक्त है।

लूसर्न न. 9 एल : यह एक गहरे हरे पत्ते, पतले डंठल और बैंगनी रंग के फूलों के साथ त्वरित बढ़ने वाली उन्नत किस्म है। यह लगभग 5–7 साल की अवधि के लिए अच्छी तरह से हरा चारा दे सकती है। यह प्रति वर्ष हरे चारे की औसत पैदावार 300 क्विंटल प्रति एकड़ देती है।

एलएल कम्पोजिट 5 : यह एक तेजी से बढ़ने वाली, लंबी वार्षिक किस्म है जिसमें बैंगनी फूलों के साथ गहरे हरे पत्ते होते हैं। इस किस्म के बीज मोटे होते हैं। यह कोमल फफूंदी के लिए प्रतिरोधी देता है। यह 280 क्विंटल प्रति एकड़ की औसत पैदावार देती है।

एलएल कम्पोजिट 3 : यह किस्म पूरे देश में उगाये जाने के लिए उपयुक्त है। यह कोमल फफूंदी और रहने के लिए प्रतिरोध देता है। यह औसतन 160 क्विंटल हरा चारा प्रति एकड़ की उपज देती है।

चेतक (एस 244) : यह पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और गुजरात में खेती के लिए उपयुक्त है। यह 560 क्विंटल प्रति एकड़ हरे चारे की औसत उपज देती है।

भूमि व खेत की तैयारी : इसमें अधिक वर्षा और अधिक आर्द्रता की आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए, यह कम वर्षा वाले क्षेत्रों में पानी की सुनिश्चित आपूर्ति के साथ बहुत सफलतापूर्वक उगाया जाता है। गहरी और अच्छी तरह की दोमट मिट्टी इस फसल के लिए सबसे अच्छी है। मृदा की क्षारीयता व जल भराव की स्थिति फसल की बढ़वार के

*Corresponding author: satpal_fpj@hau.ac.in

लिए अच्छी नहीं होती। यह अम्लीय व सेम वाली भूमि में भी अच्छी नहीं होती।

बुवाई का समय : बुवाई के लिए सबसे अच्छा समय अक्टूबर से नवंबर के पहले सप्ताह तक है।

बीज दर : अच्छी फसल के लिए लगभग 4 से 5 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ की दर से पर्याप्त रहता है।

राइजोबियम टीके से बीजोपचार :—रिजका जहां पहली बार बोएं उन खेतों में इसके बीज को उपचारित करने की जरूरत होती है क्योंकि इसके विकास के लिए एक विशेष प्रकार के जीवाणु की जरूरत होती है जो कि उन खेतों में नहीं पाया जाता। इन जीवाणुओं का टीका स्थानीय किसान सेवा केंद्र अथवा चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार के माइक्रोबायोलोजी विभाग से प्राप्त किया जा सकता है।

टीकाकरण का तरीका : 100 ग्राम गुड़ का आधा लीटर पानी में घोल तैयार करें। इसमें रिजका के टीके का एक पैकट मिला दें। इस घोल को 4—5 किलों बीज में अच्छी तरह मिला दें ताकि प्रत्येक बीज के ऊपर इसका लेप लग जाए। अन्त में बीज को छाया में सुखाएं।

बुवाई की विधि : पहले बढ़िया खेत तैयार किया जाना चाहिए। उचित नमी की स्थिति में उचित गहराई पर केरा विधि द्वारा 30 सेमी के फांसले पर पंक्तियों में फसल की बुवाई करें। बीज को 1.5 सेमी से अधिक गहरा नहीं लगाया जाना चाहिए। छींटा विधि से की गई बुवाई में यह अत्यंत आवश्यक है जितनी जल्दी हो सके बीज को मिट्टी से ढक दें। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रिजका का बीज का आकार में बहुत छोटा होने के कारण बीज दो सेमी से अधिक गहरा ना जाए।

खाद और उर्वरक : बारहमासी फसल होने के नाते, बलुई दोमट मिट्टी में गोबर की खाद डालने से रिजका अच्छी प्रतिक्रिया देता है। हर साल 50 क्विंटल गोबर की खाद या कम्पोस्ट प्रति एकड़ डालना लाभकारी होता है। जहां पहली बार रिजका की खेती की जा रही है, वहां सहजीवी बैक्टीरिया के माध्यम से मिट्टी में वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण को बढ़ाया जा सकता है। बीज के साथ राइजोबियम मेलिलोटी से टीकाकरण की सिफारिष की जाती है, इसके अलावा इसके लिए 10 किलो नाइट्रोजन (22 किग्रा यूरिया), 40 किलो फॉस्फोरस (250 किग्रा सिंगल सुपरफॉस्फेट) की बेसल खुराक की भी आवश्यकता होती है जोकि बुवाई के समय 10 सेमी गहराई पर मिट्टी में ड्रिलिंग करके लगाया जाना चाहिए। बाद में हर साल नवंबर के महीने में 50 किलोग्राम फॉस्फोरस (312 किग्रा सिंगल सुपरफॉस्फेट) डालें।

सिंचाई : पहली सिंचाई बुवाई के लगभग एक महीने बाद लगानी चाहिए। बाद की सिंचाई के लिए इष्टतम अंतराल गर्मियों में 10 से 15 दिन, वसंत में 15 से 20 दिन और सर्दियों में 20 से 25 दिन है। बरसात के मौसम में पानी को स्थिर नहीं होने देना चाहिए।

हरे चारे की पैदावार : पहली कटाई के लिए तैयार होने के लिए नई—बोई गई फसल में लगभग तीन से चार महीने लगते हैं। बाद की कटिंग 30 से 40 दिनों के अंतराल पर ली जा सकती है। प्रतिवर्ष हरे चारे की कुल पैदावार 300—400 क्विंटल प्रति एकड़ तक जा सकती है।

बीज उत्पादन : सर्वोत्तम बीज की पैदावार एक या दो साल पुरानी फसल से प्राप्त की जाती है। बीज के लिए आरक्षित खेतों में, मार्च के पहले सप्ताह में चारे की आखिरी कटाई करें। जून के दूसरे सप्ताह से जून के अंत तक बीज की फसल काट ली जाती है। औसतन, यह प्रति एकड़ 180—250 किलोग्राम बीज देता है।

कीट व रोग प्रबंधनः रिजका वीविल व चैंपा इस फसल के दो महत्वपूर्ण कीट हैं। 30 मिली नीम का तेल प्रति लीटर पानी की दर से प्रयोग करके से ये कीड़े प्रबंधित हो सकते हैं। रिजका के सबसे अधिक महत्वपूर्ण रोग रतुआ, लीफ स्पॉट, डाउनी मिल्ड्यू और फाइटोप्थोरा रोट हैं। गर्मी के दौरान रतुआ बीमारी ज्यादा आती है। आमतौर पर जब मार्च के दूसरे पखवाड़े के दौरान जब तापमान 30 डिग्री सेंटीग्रेड के आसपास होता है। जब रतुआ का प्रकोप ज्यादा हो तो पत्तियों पर छोटे या तिरछे गहरे भूरे रंग के उभार दिखाई देते हैं, पत्तियां सिकुड़ जाती हैं व समय से पहले ही गिर जाती है। डाउनी मिल्ड्यू बीमारी ठंडी और गीली परिस्थितियों में गंभीर होती है व आमतौर पर जनवरी के महीने में दिखाई देती है। हल्के हरे रंग की पत्तियां और पत्तियों की निचली सतह पर सफेद माइसिलियम डाउनी मिल्ड्यू के लक्षण होते हैं।

डाईथेन एम—45 (0.25 प्रतिशत) का स्प्रे के रूप में उपयोग रतुआ व लीफ स्पॉट नियंत्रण के लिए प्रभावी है। डाउनी मिल्ड्यू (फफूंदी) के नियंत्रण के लिए मैनकोजेब का छिड़काव करने की सलाह दी जाती है। फाइटोप्थोरारोट गीली मिट्टी में जड़ सड़न होती है, खासकर जब लंबे समय तक पानी खड़ा रहता है। इसके प्रबंधन के लिए इष्टतम जल प्रबंधन के साथ प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग की सिफारिश की जाती है।

जैविक डेरी फार्मिंग की विशेषताएँ

रेखा दहिया[1]* एवं राजेन्द्र सिंह[2]

[1]पशु विज्ञान केन्द्र, पलवल, [2]पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक

लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

डेरी फार्मिंग कृषि की एक श्रेणी है तथा पशुपालन से जुड़ा एक पारंपरिक व्यवसाय है जिसके अंतर्गत दुग्ध उत्पादन उसकी प्रोसेसिंग और खुदरा ब्रिकी के लिए किए जाने वाले कार्य आते हैं। डेरी फार्मिंग में गाय पालन तथा भैंस पालन डेरी फार्मिंग की रीढ़ है। डेरी फार्मिंग में गायों, भैंसों के प्रति स्नेह, बुनियादी स्वच्छता, वैज्ञानिक रूप से डेयरी फार्म के प्रबंधन के बारे में ज्ञान, व्यापार रणनीति, बिना छुट्टी के दिन रात मेहनत करने को तैयार आदि आवश्यक कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।

जैविक डेरी फार्मिंग में पशुओं के प्राकृतिक व्यवहार को बढ़ावा देना, कम से कम तनाव में रहना, विषैले रासायनिक अवशेषों से मुक्त पशु उत्पाद द्वारा मानव के स्वास्थ्य को बढ़ावा देना तथा मानवीय तरीकों द्वारा पशु उत्पादन का सुधार कर पशु कल्याण को बढ़ावा देना ही जैविक डेरी फार्मिंग के उदेश्य है।

राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम भारत सरकार द्वारा जैविक फार्मिंग के महत्व को देखते हुए आरंभ की है तथा कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ निर्यात प्राधिकरण, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के द्वारा सन् 2000 में शुरू किया गया। जैविक डेरी ने 1990 में जैविक बाजार में अपनी प्रमुख पहचान बनाई। राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, जम्मू कश्मीर के पहाड़ी क्षेत्र, अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा में कृषि तथा जलवायु जैविक डेरी फार्मिंग के लिए बेहद उचित है।

जैविक डेरी फार्मिंग की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है :–

- जैविक डेरी फार्मिंग छोटे किसानों के लिए कम निवेश पर बहुत ही लाभकारी तथा स्थाई उत्पादन पद्धति है।
- पशुओं तथा फार्म का रूपांतरण मानकों के अनुसार एक निश्चित समय की अवधि में पूरा होने के कम से कम 1 वर्ष बाद पशुओं से प्राप्त दूध व उसे बने दूध पदार्थ जैविक दूध व दूध उत्पाद के नाम से बेचे जा सकते हैं।
- जैविक डेरी फार्मिंग में 3 वर्ष तक फसलों को उगाने के लिए निषेध रसायनों, विटामिन व खनिज मुक्त खेती करनी चाहिए।
- पशुओं के लिए घास, चारा, फसलों के लिए भूमि कम से कम तीन साल के लिए सभी कृत्रिम उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग से प्राप्त नहीं होनी चाहिए।
- जैविक डेरी फार्मिंग में पशुओं का पालन–पोषण, स्वास्थ्य तथा पशु का आवास सभी में जैविक निवेशों का उपयोग होता है।
- स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल रहने वाली नस्लों का चयन जैविक डेरी फार्मिंग के लिए करें।
- चार सप्ताह की आयु के पशु जो खीस का सेवन कर चुके हों और केवल दूध ही आधारित पोषण पा रहे हों, उन्हीं पशुओं को जैविक डेरी फार्मिंग के लिए चयन करें।
- डेरी पशुओं का जन्म एवं पालन–पोषण केवल जैविक फार्म पर ही होना चाहिए तथा जैविक दूध ही पिलाना चाहिए।
- गायों तथा बछड़ों को 100 प्रतिशत जैविक चारा ही दिया जाना चाहिए। जैविक डेरी फार्म में छह माह से उपर के पशुओं को चारागाह भेजना चाहिए।
- कृत्रिम गर्भाधान किया जा सकता है परन्तु हार्मोन के द्वारा पशु को मद में नहीं लाया जाता है।
- जैविक डेरी फार्मिंग में एंटी बायोटिक दवाओं का

*Corresponding author: drkldahiya@hotmail.com

उपयोग नहीं होता है। केवल अनुमोदित स्वास्थ्य संबंधी उत्पाद ही इस्तेमाल होते हैं।

- आयुवैदिक, होम्योपैथिक, यूनानी चिकित्सा एवं एक्यूपंचर द्वारा रोग ग्रस्त पशु का उपचार किया जाना चाहिए।
- आवश्यक टीकाकरण केवल वैधानिक रूप से किया जाता है किन्तु अनुवंशिक रूप से तैयार टीकों का प्रयोग नहीं होता है।
- पशुओं के चलने के लिए पर्याप्त खुला स्थान खुली हवा सूर्य की रोशनी, बैठने व आराम के लिए उचित स्थान पर्याप्त ताजा पानी एवं बारिश, अधिक तापमान व वर्षा से बचाव की सुविधा होनी चाहिए।
- पशुपालकों का जैविक डेरी फार्मिंग के लिए पर्याप्त मापदंड के रिकार्ड रखने चाहिए।
- जैविक डेरी में पाले गए पशुओं में दूध उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता अधिक होती है तथा पशुपालन में खर्च भी कम होता है।
- जैविक दूध में 60% कन्जुगेटिक लीनोलिक अम्ल (लाभकारी फैटी एसिड) अधिक होता है।
- जैविक डेरी फार्मिंग से प्राप्त दूध उत्पादों की कीमत 25—50 प्रतिशत अधिक मिल सकती है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 930-000-0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

पशुओं से मनुष्य में होने वाली कुछ महत्वपूर्ण बीमारियाँ

रश्मि, रविदत्त* एवं सुखबीर रावीश

मादा पशु एवं प्रसूति रोग विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

परिचय :

ये वो रोग हैं जो प्राकृतिक रूप से जानवरों और मनुष्यों के बीच संचारित होते हैं। जैसे– ऐंथ्रेक्स, प्लेग, ब्रूसीलोसिस, ग्लैंडर्स और रेबीज।

(क) एंथ्रेक्स :

यह पशुओं का तीव्र, सेप्टिसिमिक और संक्रामक रोग है। यह रोग विश्वभर में मुख्य रूप से शाकाहारी पशुओं को प्रभावित करता है।

कारक एजेंट : बेसिलस अन्थ्रसिस जीवाणु।

संचरण : इसका पशुओं में संचरण दूषित चारे का अंतर्ग्रहण और बीजाणुओं का अंतःश्वसन से तथा मनुष्यों में संक्रमित पशु के संपर्क में आने से और अधपका माँस खाने से फैलता है।

बीमारी के लक्षण : मनुष्य में यह बीमारी त्वचीय, न्यूमोनिक और गेस्ट्रोइंटेस्टाइनल रूप में होती है। त्वचीय एंथ्रेक्स 95–99% तक मामलों में होता है, इसमें फुंसी मुख्य रूप से चेहरे, सिर, गर्दन, और पैरों पर होती है। फ्लू/सर्दी जैसे लक्षण, साँस लेने में तकलीफ, सेप्टीसीमिया और मृत्यु भी हो सकती है। पशुओं में यह 1070 फारेनहाइट बुखार, गले में सूजन करता है तथा गर्भवती पशु का गर्भपात भी हो सकता है। जानवर के शव में गैस बनने और पेट फूलने से शव तेजी से सड़ता है। रिगर मोर्टिस अनुपस्थित होता है और प्राकृतिक छिद्रों से रक्त का स्त्राव होता है।

रोकथाम और नियंत्रण : उचित शव निपटान द्वारा, प्रयोगशालाओं में 5% लाइसोल और 10% फॉर्मेलिन के साथ परिसर का कीटाणुशोधन तथा मनुष्यों में (18–65 उम्र) ''बायोथ्रेक्स'' वैक्सीन का प्रयोग करने से संक्रमण से बचा जा सकता है।

(ख) प्लेग :

यह तीव्र, अत्याधिक घातक, पुनः उभरने वाला जीवाणु रोग है। इसको उल्लेखनीय रूप से ''काली मौत'' और ''पेस्टी'' कहा जाता है। यह रोग ''महामारी'' और ''म्यूराइनप्लेग'' के नाम से भी जाना जाता है।

कारक एजेंट : एर्सीनीआ पेस्टिस।

संचरण : पिस्सू के काटने, सीधे के पशु संपर्क और हवा से फैलता है। चूहे इसके

*Corresponding author: raviduttvets@yahoo.co.in

प्राथमिक होस्ट हैं और दूसरे जानवर जैसे गाय, भेड़, बकरी, ऊँट इत्यादि आकस्मिक होस्ट हैं।

बीमारी के लक्षण : कुत्तों, भेड़ों और बकरियों में कोई लक्षण नहीं आते, बल्कि घरेलू और जंगली बिल्लियाँ इसके प्रति संवेदनशील होती हैं। इनमें सबमेन्डिबुलर लिम्फनोड की सुजन, अधिक छींक आना, जिसके परिणाम स्वरूप मृत्यु हो जाती है या 7 दिनों में स्वास्थ्य सुधार हो जाता है।

मनुष्यों में यह बीमारी– बुबोनिक (तेज बुखार, लिम्फनोड्स की भयानक सूजन, मृत्यु दर (25–30%) सेप्टिसिमिक (मृत्यु दर 100%) और न्यूमोनिक रूप में होती है।

निवारण : संक्रमित जानवरों का क्वारंटाइन, पिस्सू नियंत्रण और चूहों का नियंत्रण करके किया जा सकता है।

(ग) ब्रूसीलोसिस :

यह जानवरों का संक्रामक जीवाणु रोग है। पशुओं में इसे ''बैंग्सडिजीज'', ''एबार्टस फीवर'' तथा मनुष्यों में ''माल्टा बुखार'' भी कहा जाता है।

कारक एजेंट : ब्रूसेला एबॉर्ट्स जीवाणु

संचरण : पशुओं में मुख मार्ग से चाटने/जननांग स्राव के माध्यम से होता है। मनुष्यों में यह बीमारी संक्रमित पशु के मल–मूत्र, गर्भपात भ्रूण के सम्पर्क में आने से और कच्चे दूध को पीने से होती है।

लक्षण : मनुष्यों में तेज बुखार, रात में पसीना आना, जोड़ों में दर्द और अण्डकोश में सूजन होती है। पशुओं में तीसरी तिमाही में गर्भपात (सिर्फ एक बार), मृत बच्चे का जन्म और बाँझपन भी हो सकता है। जेर में ''एरिथ्रिटोल'' विकास का पक्षधर है जो गर्भपात के लिए पूर्वगामीकारक के रूप में कार्य करता है। इसके अलावा जेर ना डालना और मवेशियों के सामने के घुटनों में पानी भर जाता है।

रोकथाम और निवारण : पशुओं में इसका कोई इलाज न होने की वजह से पशु को स्लॉटर कर देना ही ठीक होता है। जेर का उचित निवारण और दूध का नियमित पाश्चुरीकरण करके इसके संचरण को रोका जा सकता है।

(घ) तपेदिक (टी.बी.) :

यह मनुष्य और जानवरों की एक पुरानी, दुर्बल करने वाली संक्रामक बीमारी है। यह बीमारी कम रोग प्रतिरोधक क्षमता वाले रोगियों (एच.आई.वी./एड्स) में अधिक होती है।

कारक एजेंट : माइकोबैक्टेरियम जीवाणु।

संचरण : एरोसोल और अंतर्ग्रहण से होता है।

लक्षण : पशुओं में फेफड़े आमतौर पर प्रभावित होते हैं और घाव यकृत, स्प्लीन और थनों में पाए जाते हैं। संक्रमित जानवर धीरे–धीरे शरीर का वजन कम करता है और क्षीण हो जाता है। कभी–कभी पेट में दर्द के साथ दस्त, सूजन तथा त्वचीय रूप में गाँठदार सूजन होती है। मनुष्यों में फेफड़ों में टी.बी. की गाँठ, खांसी, बुखार, भूख न लगना, हड्डी, जोड़ों और गुर्दे की टी.बी. हो सकती है।

रोकथाम और निवारण : संक्रमित पशुओं और मनुष्यों का क्वारंटाइन और उचित उपचार करके इस रोग की रोकथाम की जा सकती हैं।

(ङ) ग्लैंडर्स :

यह घोड़ों, गधों और खच्चरों का अत्याधिक संक्रामक रोग है और मनुष्यों में घातक होता है।

कारक एजेंट : बुर्खोल्डेरिया मालेई जीवाणु।

संचरण : अंतर्ग्रहण, एरोसोल, ओकुलर श्लेष्मा के माध्यम से होता है तथा गर्भकाल के दौरान घोड़ी से बच्चे में होता है।

लक्षण : पशुओं में फुफ्फुसीय (फेफड़ों में पीली और लजीज मवाद युक्त पिंड), नाक (मवाद आना, नासूर जख्म बनना), त्वचीय/फार्सी (फार्सी पाइप) होते हैं तथा मनुष्यों में त्वचा पर ना भरने वाले जख्म, फेफड़ों में फोड़ा, सीने में दर्द, खांसी और साँस की तकलीफ होती है।

रोकथाम और निवारण : प्रभावित जानवर का स्लॉटर, परिसर का कीटाणुशोधन से किया जा सकता है।

(च) रेबीज :

मनुष्य में ''हाइड्रोफोबिया'' रेबीज वायरस के कारण होने वाला एक सीधा मानवजनित रोग है।

कारक एजेंट : लायसा वायरस।

संरचण : मानव संक्रमण सबसे आमतौर पर पागल जानवरों के काटने से होता है और मानव से मानव में कॉर्नियल प्रत्यारोपण के माध्यम से देखा गया है। लक्षण आने के 10 दिन पहले ही वायरस लार में गिरना शुरू हो जाते हैं।

लक्षण : रेबीज़ से पीड़ित कुत्ता वस्तुओं, जानवरों और मनुष्यों को काटता है। इसमें प्रचुर मात्रा में लार, लक्ष्यहीन भटकना और मालिक को ना पहचानना मुख्य लक्षण हैं। इस बीमारी का कोर्स 1–11 दिन तक का होता है। मनुष्य में बुखार, भूख न लगना, चिंता, मतिभ्रम, अति सक्रियता और हाइड्रोफोबिया होता है। लक्षण आने के 4–14 दिन बाद मृत्यु हो सकती है।

काटने का प्रबंधन : कुत्ते द्वारा काटी हुई जगह को बहते पानी से धोना, फिर साबुन से धोना, विषाणुनाशक एंटीसेप्टिक्स लगाना, टेटनस और एंटीबायोटिक दवाओं का इंजेक्शन और रेबीज़ वैक्सीन का पोस्ट एक्सपोजर टीकाकरण के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

भारत में जापानी बटेर की खेती की वर्तमान स्थिति, संभावनाएँ और बाधाएँ

सरिता कौशल[1]* एवं शिवेंद्र अग्रवाल[2]

पशुचिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर, (मध्यप्रदेश)

परिचय : विकासशील देशों में जनसंख्या के आकार में घातीय वृद्धि से मानव आबादी के लिए प्रोटीन की उपलब्धता को बनाए रखने के लिए पशु प्रोटीन की आपूर्ति में एक समान मांग की आवश्यकता होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लगभग 20.5 मिलियन लोग अपनी आजीविका के लिए पशुधन पर निर्भर हैं।

पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन विभाग, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट (2018–19) के अनुसार, विशाल पशुधन संसाधनों वाला भारत, सकल घरेलू उत्पाद का 4.11 प्रतिशत और कुल कृषि सकल घरेलू उत्पाद का 25.6 प्रतिशत योगदान देता है। हालांकि, पोल्ट्री फार्मिंग में ज्यादातर चिकन, जापानी बटेर, बत्तख, टर्की और गीज को भारत में भोजन के लिए मांस या अंडे का उत्पादन करने के लिए शामिल किया जाता है।

जापानी बटेर क्यों : छोटा आकार, कम फीड आवश्यकताएं, आसान संचालन, लघु जीवन चक्र, अच्छी प्रजनन क्षमता, अच्छा स्वादिष्ट मांस, तेजी से विकास दर, अंडे सेने का कम समय, बटेरों को परिपक्व होने और 45 से उत्पादन में आने के लिए केवल 40 और 50 दिनों की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर देखें तो, मुर्गी को परिपक्व होने के लिए औसतन 6 महीने की आवश्यकता होती है।

भारत में जापानी बटेर पालन की वर्तमान स्थिति : बटेर को पालतू बनाने का पहला प्रयास 1595 में जापान में किया गया था। वर्ष 1974 में सेंट्रल एवियन रिसर्च इंस्टीट्यूट, बरेली, उत्तर प्रदेश ने कैलिफोर्निया से जापानी बटेर का आयात किया। तब से उनके आर्थिक लक्षणों और पालन–पोषण के तरीकों में काफी सुधार हुआ है। भारत में बटेर की दो प्रजातियाँ पाई जाती हैं यानी ब्लैक ब्रेस्टेड बटेर (कॉटर्निक्स कोरोमैंडेलिका) और अन्य प्रजाति ब्राउन कलर की जापानी बटेर (कोटर्निक्स कॉटर्निक्स जैपोनिका) है।

*Corresponding author: ag123shiv@gmail.com

भारत में वाणिज्यिक बटेर की खेती अच्छी आय और रोजगार के अवसर का बड़ा स्रोत हो सकती है। आर्थिक महत्व के साथ–साथ बटेर की खेती भी बहुत आनंददायक और मनोरंजक है। बटेर बहुत छोटे आकार के कुक्कुट पक्षी होते हैं, और इनका पालन–पोषण बहुत आसान और सरल होता है। बटेर मांस और अंडे के व्यावसायिक उत्पादन के लिए बहुत उपयुक्त हैं, और वाणिज्यिक बटेर पालन व्यवसाय किसी भी अन्य पोल्ट्री व्यवसाय की तुलना में अधिक लाभदायक है। बटेर लगभग सभी प्रकार की जलवायु और पर्यावरण के साथ खुद को अपना सकते हैं, और भारतीय जलवायु व्यावसायिक रूप से बटेर पालन के लिए बहुत उपयुक्त है।

बटेर को पिंजरों में पाला जाता है क्योंकि इसकी कम जगह की आवश्यकता और आसान प्रबंधन के कारण उन्हें महिलाओं और बच्चों द्वारा आसानी से पाला जा सकता है। यही कारण है कि भारत में बटेर की खेती में निरंतर बढ़ रही है।

संभावनाएं :

1. बटेर बहुत छोटा पक्षी है। परिपक्व नर और मादा लगभग 140 और 200 ग्राम होते हैं। जापानी बटेर पालन में अपार संभावनाएं हैं, और विशेष रूप से लाभकारी रोजगार, पूरक आय और मांस और अंडे के मूल्यवान स्रोत के रूप में मुर्गी पालन का विकल्प हो सकता है।
2. जापानी बटेर तुलनात्मक रूप से मुर्गियों की तुलना में संक्रामक रोगों के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते हैं, जैसे साल्मोनेलोसिस, कोक्सीडायोसिस, संक्रामक कोरिजा, आंत्र दस्त, और निमोनिया आदि। इसलिए, बटेरों को कोई टीकाकरण नहीं दिया जाता है। जो भी दवा दी जाती है उसे पीने के पानी के माध्यम से पिलाया जाता है।

3. बटेर बहुत तेजी से बढ़ते हैं और किसी भी अन्य पोल्ट्री पक्षियों की तुलना में तेजी से परिपक्वता प्राप्त करते हैं। बटेरों को परिपक्व होने और 45 दिनों की उम्र से उत्पादन में आने के लिए केवल 40—50 दिनों की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, चिकन को परिपक्व होने के लिए औसतन 6 महीने की आवश्यकता होती है।

4. जापानी बटेर अब व्यापक रूप से राज्य, संघीय, विश्वविद्यालय और निजी प्रयोगशालाओं में अनुसंधान उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है। जिन क्षेत्रों में कॉटर्निक्स जैपोनिका का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। उनमें शामिल हैं— आनुवंशिकी, पोषण, शरीर विज्ञान, विकृति विज्ञान, भ्रूण विज्ञान, कैंसर, व्यवहार और कीटनाशकों की विषाक्तता। यह जीव विज्ञान के पाठ्यक्रमों को पढ़ाने में एक उपयोगी प्रयोगशाला पशु भी साबित हुआ है। जापानी बटेरों का प्रयोग प्रयोगशाला पशुओं के लिए कई कारणों से किया जाता है। जैसे— कम जगह और रखरखाव की आवश्यकता होती है, प्रयोगशाला स्थितियों के अनुकूल, छोटी पीढ़ी के अंतराल और उच्च प्रजनन क्षमता, कई विशिष्ट उपभेदों। पिछले 50 वर्षों से, जापानी बटेर (कॉटर्निक्स जैपोनिका) अनुसंधान के कई क्षेत्रों में एक लोकप्रिय पशु मॉडल रहा है।

5. बटेर अंडे का पोषक मूल्य— मुर्गी के अंडे में 11 प्रतिशत की तुलना में बटेर के अंडे में 13 प्रतिशत प्रोटीन होता है। बटेर अंडे की सफेदी का सबसे आवश्यक अमीनो एसिड ल्यूसीन, वेलिन और लाइसिन हैं। बटेर अंडे विटामिन और खनिजों से भरे होते हैं। अपने छोटे आकार के साथ भी, उनका पोषण मूल्य मुर्गी के अंडे से तीन से चार गुना अधिक होता है। बटेर के अंडे में भी चिकन अंडे में 50 प्रतिशत की तुलना में 140 प्रतिशत विटामिन बी 1 होता है। इसके अलावा, बटेर के अंडे पांच गुना ज्यादा आयरन और पोटेशियम प्रदान करते हैं।

बाधाएँ :

1. अंडा उत्पादन— पालतू बटेरों में ब्रूडिंग की प्रवृत्ति नहीं होती है इसलिए बटेर के अंडों को ब्रूडी लाइव के तहत या कृत्रिम ऊष्मायन द्वारा ऊष्मायन किया जाना चाहिए।

2. बटेर में अपनी ही प्रजाति के अन्य बटेर को खाने की प्रवृति अन्य कुक्कुट प्रजातियों की तुलना में उच्च होती है। इसमें वेंट पेकिंग, फेदर पेकिंग, टो पेकिंग, हेड पेकिंग और नोज पेकिंग शामिल हैं।

3. बटेर चूजे 8—10 ग्राम के आकार में बहुत छोटे होते हैं और मृत्यु दर बहुत अधिक होती है। पर्याप्त तापमान की अनुपस्थिति और तेज गति वाली ठंडी हवाओं के संपर्क में आने से युवा समूह एकत्रित हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उच्च मृत्यु दर होती है।

अलग—अलग उम्र में बटेर के चूजे के लिए उपयुक्त तापमान (सनावे, 1994)

आयु (दिन)	तापमान (डिग्री सेल्सियस)
1—3	35
4—5	34
6—7	33
14	29
21	24
28	21—23

4. चिकन की तुलना में बटेर को अधिक रोशनी की आवश्यकता होती है। यदि दिन छोटा हो जाता है, तो वे लेटना बंद कर देते हैं। दिन के उजाले के प्रति संवेदनशील होते हैं।

बटेर की उम्र के आधार पर प्रकाश के घंटे की आवश्यकता

आयु (सप्ताह)	प्रकाश (घंटा)
1—2	24
3—5	12
6	13
7	14
8	15
9	16
अन्य समय	16

निष्कर्ष :

लाभप्रद व्यवसाय, अतिरिक्त राजस्व और मांस और अंडे के मूल्यवान स्रोत के रूप में मुर्गी पालन के विकल्प के रूप में जापानी बटेर की व्यापक संभावनाओं को स्वीकार करते हुए, भारत में बटेर की खेती को प्रोत्साहित और बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

मिल्क फीवर: लक्षण एवं रोकथाम

कमलदीप[1], अनिका मलिक[2]* एवं सरिता[3]

[1]पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, [2]पशु पशुपालन विस्तार शिक्षा विभाग, [3]विस्तार शिक्षा
लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

मिल्क फीवर को कैल्शियम अप्लता/हाइपो कैल्शिमिया/पाचुरिपेन्ट पेरेसिसि नामों से भी जाना जाता है। इस बीमारी में पशु के शरीर मे कैल्शियम की कमी हो जाती है। यह रोग सामान्य रूप से मांसपेशियों की कमजोरी, मानसिक अवसाद एवं दूध उत्पादन की कमी की के रूप में परिलक्षित होता है। यह मुखयतः अधिक दूध देने वाले पशुओं को प्रभावित करता है।

जनन के 72 घंटों के भीतर या जनन के बिल्कुल पहले यह रोग सामान्य रूप से देखा गया है। इसका मुख्य कारण ब्यात के बाद शरीर मे कैल्शियम की कमी हो जाना है। कैल्शियम तत्व की ब्यात के समय आंतों में अवशोषण की कमी या शरीर में अपर्याप्त परिवहन के कारण भी यह रोग हो सकता है। पैराथाइराइड ग्रन्थि का कैल्शियम को उपयोग में लाने की अक्षमता के कारण भी यह रोग देखा गया है। पशु के आहार में कैल्शियम व फास्फोरेस का अनुपात उपयुक्त न होने के कारण भी पशु की कैल्शियम अवशोषण क्षमता प्रभावित होती है जिसके कारण इस रोग का जन्म हो सकता है।

एण्टीबयोटिकस (नियोमाईसिनस टैप्टोमाईसिन) का अधिक उपयोग भी कैल्शियम आयनीकरण को कम करता है। जिससे कैल्शियम की उपलब्धता कम हो जाती है। अधिकांश कैल्शियम की अल्पता दूसरे या तीसरे ब्यात के पशुओं में देखी जाती है क्योंकि इस समय पशु का दुग्ध उत्पादन अधिकतम होता है।

लक्षण :

यह रोग तीन अवस्थाओं में वर्गीकृत किया गया है। उत्तेजना, अर्दासन (बैठ जाने की अवस्था) और धराशायी अवस्था। प्रारम्भिक अवस्था में प्रभावित पशु में उत्तेजना, भूख की कमी, अति संवेदनशीलता, मांशपेशियों की हलचल, सिर का बार–2 झटकना, जीभ का बाहर निकलना, लंगडाहट, पिछले पैरो में तनाव, दांत का किटकिटाना आदि देखा जात सकता है। प्रभावित पाु चलता–2 गिर भी सकता है।

अर्दासन :

इस अवस्था में पशु उदासीन खडे होने में असमर्थता, यूरन सूखना आदि दिखाई देता है। रोग लक्षित पशु के जोड ठण्डे हो जाते हैं। संक्षाहीन व शारीरिक तापमान गिर जाता है। इस अवस्था में प्रभावित पशु अपनी गर्दन मोड़कर अपनी कॉख पर रख देता है जिसे वैज्ञानिक भाषा में किकिंग ऑफ नेक में कहा जाता है।

धरासायी :

हृदय गति कम, दुर्बल व रूमन की गति रूक जाती है। इस रोग में पशु में गुदा की शिथिलता व आंख की पुतलियों का फैलना भी देखा जा सकता है।

चिकित्सा :

1. रोगी पशु की रक्त मार्ग से कैल्शियम चिकित्सक देने सक तत्काल लाभ मिलता है।
2. रक्त मार्ग से कैल्शियम बोडोग्लुकोनेट धीरे–धीरे दिया जाता है।
3. पशु की दवाई पशु चिकित्सक के परामर्श पर ही देनी चाहिए।

रोकथाम :

1. पशु आहार में कैल्शियम एवं फास्फोरम 2:1 के स्तर से होना चाहिए।
2. कमजोर पशुओं में गर्भावस्था में कैल्शियम पूरक आहार के रूप में दिया जाना चाहिए।
3. आहार में सोडियम एवं पोटेशियम को कम मात्रा एवं गंधक तथा क्लोराइड की अधिकता के कारण शारीरिक आयन संतुलन बना रहता है। जिससे इस रोग की सम्भावना कम हो जाती है।

*Corresponding author: anikadhundwal@gmail.com

नवजात गौ/भेड-बकरी दस्त: लक्षण एवं बचाव

अनिका मलिक[1]*, कमलदीप[2] एवं अनिता दलाल[3]

[1]पशु विस्तार शिक्षा विभाग, [2]पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, [3]पशु सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग
लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

परिचय :

यह रोग मुख्यतः नवजात गौ वंश (3 माह की आयु के बछड़ा/बछड़ी) नवजात पड्डे/पड्डियों, मेमनों और बकरी के शावकों को प्रभावित करता है। इस रोग का कारण अनुचित खान–पान तथा जीवाणु (ई कोलाई) विशेष रूप से होता है।

लक्षण :

1. इस रोग की शुरूआत तीव्र और अचानक होती है। अति घातक स्थिति में प्रभावित पशु सुस्त और दुर्बल हो जाता है। पशु की भूख समाप्त हो जाती है तथा ज्वर (103.5–107 फाईनाइट) हो सकता है।
2. इस रोग में ताप बढ़ोतरी के बाद पशु तेज दस्त का शिकार हो जाता है और मल का रंग पीला हो जाता है।
3. रोग लक्षण पशु में भूख व जल की कमी हो जाती है और आंखें गड्ढे में चली जाती हैं और पेट पिचक जाता है।
4. सांस की गति बढ़ जाती है और नाक से स्त्राव का रिसाव भी पाया जाता है।
5. प्रभावित नवजात सुस्त, बेजान और धराशायी हो सकते हैं।
6. कम घातक स्थिति में पशु मल 1–3 दिन तक लेही जैसा हो सकता है।
7. शरीर का ताप पहले 12–24 घंटों में बढ़ता है परंतु 18–72 घंटे में ताप अधिक बढ़ोतरी देखी गयी है।
8. बकरी व भेड़ के मेमनों में उपर जैसे ही लक्षण देखे जाते हैं, पर इसमें यह रोग 1 माह से कम आयु में पाया जाता है।

चिकित्सा :

1. शरीर में पानी की कमी को रोकने के लिए दूध को बंद कर खनिज मिश्रण युक्त पुनः आद्रीकरण चिकित्सा प्रारंभ करे जिसके लिए ओ.आर.एस. का प्रयोग कर सकते हैं।
2. पशु चिकित्सक के परामर्श से ऐन्टिबायोटिक का प्रयोग करना चाहिए।
3. सहायक चिकित्सक के रूप में रिंगट लेक्टेल या 5–10 प्रतिशत डी.एन.एस. दिया जाना लाभकारी होगा।
4. पारम्पारिक चिकित्सा के रूप में रोग को प्रारम्भिक अवस्था में 100 ग्राम पतले दलिये में 10 ग्राम रवड़िया, 5 ग्राम नमक एवं 50 ग्राम गुड़ मिलाकर पशु को खिलाएं।
5. जौ का आटा 100 ग्राम, केओलिन 10 ग्राम, दही 100 ग्राम तथा गुड़ 50 ग्राम का मिश्रण भी लाभकारी है।

रोकथाम :

1. मुख्यतः इस बीमारी के बचाव के लिए सफाई व्यवस्था सुनिश्चित करें।
2. जन्म के 8 घंटे के भीतर पर्याप्त मात्रा में खीस पिलाएं।
3. बाड़े में सहन एवं स्वच्छ परिस्थितियां प्रदान करे।
4. अस्वस्थ पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखकर ईलाज करना चाहिए।
5. समुचित देखभाल एवं स्वच्छ पशुपालन इस रोग के निदान की कुंजी है।

*Corresponding author: anikadhundwal@gmail.com

प्रयोगशाला परीक्षण हेतु जैव पदार्थ का एकत्रीकरण

अनिका मलिक[1]*, कमलदीप[2] एवं रचना[3]

[1]पशु विस्तार शिक्षा विभाग, [2]पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, [3]व्यवसाय प्रबंधन विभाग
लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

पशुचिकित्सक में वैधानिक मुकदमों की स्थिति में पशु चिकित्सक को रोग, विकार, चोट, कुअभ्यास से बचाव, नियंत्रण, चिकित्सा या न्यायालय के लिए जैव पदार्थ को आवश्यक निदान के लिए भेजना होता है। इसके लिए पशु चिकित्सक को रोगी/मृत पशु से जैव पदार्थ लेकर प्रयोगशाला को परीक्षण एवं निदान के लिए भेजना होता है। इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है कि निदान के लिए भेजे जाने वाले नमूने व प्रयोग होने संरक्षक सम्यक है या नहीं क्योंकि इसके बिना प्रयोगशाला में ठीक–ठाक निदान नहीं हो सकता है। इससे जांचकर्ता अनावश्यक समय व धन व्यय से बच सकते हैं।

प्रयोगशाला में जांच के लिए एकत्र किये गये नूमने रोगी व मृत पशु शरीर को सम्यक प्रतिनिधि होना चाहिए तथा उसका संरक्षण व परिवहन भी इस प्रकार से होना चाहिए कि वह जब प्रयोगशाला में निदान के लिए पहुंचे तो वह ठीक–ठाक स्थिति में हो और ठीक से निदान किया जा सके।

जैव पदार्थ का एकत्रीकरण करने हेतु आवश्यक बातें :

1. प्रयोगशाला जांच के लिए भेजे जाने वाले नमूने रोगी पशु से बिना कोई उपचार दिये एकत्र किये जाने चाहिए।
2. नमूने को एकत्रीकरण करके भेजने से पहले निम्न जानकारी भी आवश्यक भेजनी चाहिए–

i) जैसे कि वैज्ञानिक इतिहास के साथ रोग के महत्वपूर्ण लक्षण

ii) रोगी पशु की जाति, नस्ल, लिंग और उम्र

iii) रोगी पशु की संख्या व कुल प्रभावित पशु की संख्या।

iv) बीमारी की अवधि।

v) मृत पशुओं की संख्या।

vi) बीमार व चोटिल पशु की स्थिति तथा पशु के साथ किये गये अपराध का प्रकार

vii) भोजन की प्रकृति, दिये गए पानी के स्त्रोत प्रबन्धन एवं आवास इत्यादि

viii) टीके का प्रकार व लगाए जाने की तिथि

ix) दिये गये उपचार के बारे में

x) शव परीक्षण में दिखाई देने वाले घाव इत्यादि

xi) मृत्यु एवं नूमने लेने कि बीच की अवधि

xii) सही नामांकन एवं पहचान : जैसे कि मालिक का पता एवं नाम, अनुमानित निदान, एकत्रित किये गये नमूने का प्रकार, स्त्रोत व मुकदमे का नम्बर इत्यादि।

3. विशिष्ट वाहक के द्वारा नमूने को भेजना चाहिए, जब उसे वर्फ में भेजा जाता है।
4. उपर लिखी हुए सूचना नमूने के साथ अलग से एक पत्र में लिखकर डाक द्वारा भेजनी चाहिए।
5. नमूने का एक प्रकिरण विशेष रूप जल्दी से जल्दी करना चाहिए।
6. मृत पशु से मृत्यु के तुरंत बाद एकत्रीकरण करना चाहिए।
7. वध किए हुए पशु से वध से तुरन्त बाद नमूने का एकत्रीकरण करना चाहिए।

*Corresponding author: anikadhundwal@gmail.com

पशुओं में रोग प्रतिरोधक क्षमता : एक परिचय

प्यारेलाल*, नरेन्द्र सिंह राठौड़ एवं अमित कुमार पाण्डे

पशु जैव रसायन विभाग

पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)

रोग प्रतिरोधक क्षमता– पशु शरीर किसी भी विशेष रोग के सूक्ष्म जीवी (जीवाणु, विषाणु आदि) अथवा उनके विष के प्रभाव को सहन करने की क्षमता अथवा विष को निष्क्रिय करने की क्षमता को पैदा करने को रोग प्रतिरोधक क्षमता कहते हैं।

एन्टिजन– वे पदार्थ जो शरीर में बाह्यरूप से प्रवेश करते हैं अथवा करवाये जाते हैं तथा जो शरीर में एन्टिबॉडी के निर्माण को प्रेरित करते हैं, एन्टिजन कहलाते हैं। जैसे– प्रोटीन, जीवाणु, विषाणु, कवक, विषैले पदार्थ आदि।

एन्टिबॉडी– यह रक्त सीरम में पाया जाने वाला एक विशिष्ट प्रकार का ग्लाईको प्रोटीन है जो किसी विशिष्ट एन्टिजन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्राणी शरीर में उत्पन्न होता है। जिनके कारण शरीर में उस विशिष्ट एन्टिजन (रोग) से लड़ने की क्षमता होती है। अतः इस विशिष्ट एन्टिबॉडी की उपस्थिति में पशु उस विशिष्ट रोग से ग्रसित नहीं हो सकता है। पशु के शरीर में एन्टिजन (बाह्य पदार्थ) टीके के रूप में देकर एन्टिबॉडी का निर्माण किया जाता है। शरीर में पांच तरह की विशिष्ट एन्टिबॉडी पायी जाती है जिसे इम्युनोग्लोब्युलीन भी कहते हैं।

1. **IgG–** यह पशु शरीर में सर्वाधिक मात्रा (75 प्रतिशत) में पाया जाने वाला इम्युनोग्लोब्युलीन है। यह गर्भावस्था में गर्भनाल (अपरा) से भ्रूण में प्रवेश करती है। भ्रूण को रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करती है।
2. **IgM–** यह किसी रोग से संक्रमण के दौरान सबसे पहले बनने वाला इम्युनोग्लोब्युलीन है। यह प्राकृतिक एन्टिबॉडी के रूप में रहता है।
3. **IgA–** यह मुख्य रूप से पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र, जनन तंत्र, दुग्ध, आंसु व लार की ग्रन्थियों के स्त्राव में पायी जाती है। यह ग्लाईको प्रोटीन के रूप में कोलोस्ट्रम (प्रसव के बाद का प्रथम दुग्ध) में उपस्थित रहता है जो कि प्रसव पश्चात् बच्चे को रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है।
4. **IgE** – यह साधारणतया बहुत ही अल्प मात्रा में पायी जाती है तथा एलर्जी क्रिया को शरीर में रोकता है। इसकी संख्या शरीर में एलर्जी होने पर बढ़ जाती है।
5. **IgD–** यह प्राणी शरीर में अल्प मात्रा में पायी जाती है तथा एन्टिबॉडी उत्पादन की शुरूआत करने में सहायता करता है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता के प्रकार –

1. अउपार्जित/अविशिष्ट रोग प्रतिरोधक क्षमता
2. उपार्जित/विशिष्ट रोग प्रतिरोधक क्षमता
   i) प्राकृतिक– सक्रिय एवं निष्क्रिय
   ii) कृत्रिम– सक्रिय एवं निष्क्रिय

अउपार्जित/अवशिष्ट रोग प्रतिरोधक क्षमता– इस प्रकार की रोग प्रतिरोधक क्षमता जन्म से ही पशु शरीर में उपस्थित होती है। इस प्रकार की रोग प्रतिरोधक क्षमता जब पशु में होती है तो जीवाणु शरीर के उतको में प्रवेश नहीं कर पाता है और यदि ऊत्तकों में जीवाणु प्रवेश कर भी जाता है तो रोग उत्पन्न करने से पहले ही उसे शरीर से हटा दिया जाता है। इन्हें हटाने की क्रिया दो प्रकार से होती है–

1. भक्षक कोशिका द्वारा फेगोसाईओसिस द्वारा
2. ऑपसोनाईजेशन द्वारा– इसमें जीवाणु के शरीर पर एक विशेष प्रकार के प्रोटीन का आवरण प्लाज्मा में उपस्थित प्रोटीन की सहायता से चढ़ा दिया जाता है ताकि वह आसानी से मेक्रोफेजेज आदि द्वारा निगला जा सके।

अउपार्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता वंशानुगत भी होती है अर्थात् किसी बीमारी को रोकने की ऐसी शक्ति जो सन्तान को अपने माता–पिता से मिलती है। जैसे– अल्जेरिया नस्ल की भेड़ को ऐन्थ्रेक्स रोग नहीं होता जबकि अन्य नस्ल

*Corresponding author: syoranpyarelal@gmail.com

की भेड़ों में यह रोग होता है। घोड़ों में प्लेग व गोवंश में ग्लेण्डर व भेड़ों में स्वाइन फीवर नामक रोग नहीं होता है।

उपार्जित / विशिष्ट रोग प्रतिरोधक क्षमता– यह रोग प्रतिरोधक क्षमता पशु द्वारा जन्म लेने के बाद अर्जित की जाती है। यह दो प्रकार की होती है–

1. **प्राकृतिक उपार्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता–** प्रार्णी जब एक बार स्वतः ही किसी रोग से ग्रसित हो जाता है तो उससे अपने आप प्राकृतिक उपार्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता जीवन भर के लिये उत्पन्न हो जाती है। यह भी दो प्रकार की होती है।

   (i) प्राकृतिक उपार्जित सक्रिय रोग प्रतिरोधक क्षमता– जब पशु किसी संक्रामक रोग फैलाने वाले सूक्ष्मजीवी (रोग कारक) के सम्पर्क में आता है तो उसमें इम्युन तंत्र द्वारा रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है और जब पशु पुनः उसी सूक्ष्मजीवी (रोग कारक) के सम्पर्क में आता है तो वह रोग ग्रसित नहीं होता है। यह रोग प्रतिरोधक क्षमता उम्र भर के लिये होती है, जैसे चेचक चिकन पॉक्स अथवा कुछ वर्षों के लिये भी हो सकती है, जैसे– डिप्थीरिया, टिटेनस।

   (ii) प्राकृतिक उपार्जित निष्क्रिय रोग प्रतिरोधक क्षमता– इस रोग प्रतिरोधक क्षमता में एन्टिबॉडी किसी एक पशु के शरीर में उत्पन्न होती है, जिसे डोनर कहते है तथा यह एन्टिबॉडी किसी माध्यम से दूसरे पशु को स्थानान्तरित कर दी जाती है जिसे ग्राही कहते हैं। जैसे मां से बच्चे में गर्भनाल (अपरा) द्वारा स्थानान्तरित करना अथवा कोलोस्ट्रम (खींस) द्वारा पूर्व में बनी एन्टिबॉडी का बच्चे में पहुंच कर बीमारियों से बचाव करना।

2. **कृत्रिम उपार्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता–** यह विशिष्ट प्रकार की प्रतिरक्षा है। इसके पशु किसी विशेष सूक्ष्म जीवी (जीवाणु, विषाणु) व विष में सम्पर्क में आता है तथा इम्युन तन्त्र द्वारा इस विशेष सुक्ष्मजीवी के विरुद्ध एन्टिबॉडी बनाता है तथा जब भी पशु भविष्य में उस विशेष सूक्ष्मजीवी (रोग कारक) के सम्पर्क में आता है तो वह उस रोग से ग्रसित नहीं होता है। जैसे– टीकाकरण। यह भी दो प्रकार की होती है–

   (i) कृत्रिम उपार्जित सक्रिय रोग प्रतिरोधक क्षमता– यह प्रतिरक्षा पशुओं में विभिन्न प्रकार के टीके लगाने से उत्पन्न होती है अर्थात् एन्टिजन बाहर से टीके के रूप में प्रवेश करवाया जाता है। जैसे– FMD, HS, BQ के टीक।

   (ii) कृत्रिम उपार्जित निष्क्रिय रोग प्रतिरोधक क्षमता– इस प्रतिरक्षा में विशेष प्रकार का सूक्ष्मजीवी (रोग कारक) अथवा विष किसी पशु के शरीर में इन्जेक्सन लगाकर उसमें रोग पैदा किया जाता है जिससे उस पशु के शरीर में एन्टिबॉडी बन जाये तथा इसके बाद इस पशु के रक्त से सीरम निकाल कर एकत्रित कर लिया जाता है। इस सीरम में एन्टिबॉडी उपस्थित रहती है। यह सीरम जब किसी अन्य रोग ग्रसित पशु को लगाया जाता है तो उस अन्य पशु को रोग मुक्त कर पशु का जीवन बचाया जा सकता है। जैसे– एन्टिवेनेम, टेट वेक आदि।

पशुओं में यूरिया विषाक्तता : बचाव एवं उपचार

अतुल शंकर अरोड़ा*

पशु विज्ञान केंद्र, कोटा

प्रसार शिक्षा निदेशालय, राजस्थान पशुचिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज.)

यूरिया विषाक्तता जुगाली करने वाले पशुओं मुख्यतः गौ एवं भैंस वंश मे होने वाले विषाक्तताओं में से एक है। यूरिया का उपयोग किसानों एवं पशुपालकों द्वारा फसलों एवं पशुओं के आहार मे फीड सप्लीमेंट के रूप में किया जाता है। यूरिया प्रोटीन का बहुत ही सस्ता एवं आसानी से उपलब्ध हो जाने वाला स्त्रोत होने के कारण पशुपालकों द्वारा पशु आहार में इसका उपयोग किया जाता है। निर्धारित सीमा से ज्यादा यूरिया यदि पशु खा ले तो उसके रूमन मे अमोनिया की मात्रा बहुत ही ज्यादा बढ़ जाएगी और यह पशुओं के लिए घातक हो सकता है। यूरिया विषाक्तता होने पर रक्त में अमोनिया की मात्रा बढ़ जाती है। यूरिया रूमन में पहुँचकर अमोनिया में बदल जाता है जिसे रूमन में मौजूद माइक्रोफ्लोरा उपयोग में लेकर प्रोटीन बना लेते हैं, किन्तु यूरिया की अधिक मात्रा के सेवन से अधिक मात्रा में बनी अमोनिया पूर्ण रूप से प्रोटीन बनाने में उपयोग में नहीं आ पाती है और रूमन में अमोनिया की मात्रा बढ़ जाने से रूमेन का पी.एच. बढ़ जाता है एवं अमोनिया का अवशोषण भी बढ़ जाता है जिससे रूमन में अमोनियकल नाइट्रोजन बढ जाती है और अधिक मात्रा में अमोनिया रूमन मे अवशोषित हो जाती है एवं यकृत में पहुंचकर यह वापस यूरिया में बदल जाती है और गुर्दों द्वारा मूत्र में उत्सर्जित हो जाता है। जब बहुत अधिक यूरिया रक्त में बढ़ जाता है तो यूरिया विषाक्तता हो जाती है।

कारण :

हरे चारे एवं दाने की कमी के कारण पशुओं की निर्भरता सूखे चारे पर बढ़ जाती है। इस प्रकार के चारे की पौष्टिकता बढ़ाने के लिए उसका यूरिया द्वारा उपचारित करना सबसे बढ़िया, सस्ता, सरल एवं कारगर विधि है। चारा उपचारित करते समय यदि यूरिया के घोल को ठीक से नहीं मिलाया जाये, पशु द्वारा यूरिया का घोल पी लिया जाए अथवा यूरिया उपचारित चारा अधिक मात्रा में खा लिया जाये या खेतो या घरों मे भंडार किये यूरिया को पशु खा ले तो पशु में यूरिया विषाक्तता हो सकती है।

*Corresponding author: arorasatul@gmail.com

लक्षण :

- यूरिया विषाक्तता के प्रारम्भिक लक्षणों में पशु में आफरा के साथ–साथ पेट दर्द होता है एवं सांस लेने में कठिनाई होने लगती है।
- यूरिया विषाक्तता से पशु बेचैन एवं सुस्त हो जाता है, मुँह से अधिक मात्रा में लार गिरती है।
- मांसपेशियों में ऐंठन होने लगती है एवं पशु लड़खड़ाने लगता है। कभी–कभी दांत पीसता है एवं पशु हिंसक भी हो जाता है। पशु बार–बार पेशाब व गोबर करता है।
- यूरिया की अधिक मात्रा के सेवन से पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

उपचार :

- यूरिया विषाक्तता के लक्षण प्रकट होते ही पशुचिकित्सक से संपर्क करना चाहिए एवं पशुचिकित्सक के आने से पूर्व प्राथमिक पशुचिकित्सा के रूप मे पशु को सर्वप्रथम 40 से 45 लीटर पानी एवं 2 से 6 लीटर, 5 प्रतिशत एसीटिक एसिड (सिरका/विनेगर) मिलाकर पिलाना चाहिए।
- पशु शरीर मे यूरिया विषाक्तता से होने वाले अन्य लक्षणों को रोकने के लिए एंटीबायोटिक, एंटीहिस्टामिनिक एवं पशु ग्याभिन ना हो तो कारटिकोस्टिरोइड भी दे सकते हैं।
- रक्त में यूरिया की विषाक्तता को कम करने के लिए फ्ल्यूड थैरेपी देना भी लाभकारी साबित होता है।

बचाव :

- चारा उपचारित करने हेतु उपयोग में लिये जा रहे यूरिया के घोल को पशु से दूर रखना चाहिए।

- चारे को यूरिया उपचारित करते समय पूरी सावधानी रखनी चाहिए तथा यूरिया की निर्धारित मात्रा का ही उपयोग करना चाहिए एवं चारे में यूरिया के घोल को भली–भांति मिलाना आवश्यक है।
- उपचारित चारे को थोड़ी–थोड़ी मात्रा में अन्य सामान्य चारे के साथ मिलाकर देना चाहिए।
- उपचारित चारे के साथ पशुओं को पर्याप्त मात्रा में पानी पिलाना जरूरी है।
- यूरिया मिश्रित आहार कम मात्रा से शुरू करके उसकी मात्रा धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिए।
- बारिश के मौसम में गीले यूरिया मिश्रित आहार नहीं देना चाहिए।
- पशुओं के आहार मे यूरिया मिश्रित आहार खिलाने से पहले नमक मिलाकर साधारण आहार खिलाना चाहिए।
- यूरिया को जुगाली करने वाले पशुओं के आहार के दलिया / बांट का दो से तीन प्रतिशत से अधिक नहीं देना चाहिए और दिए जाने वाले कुल आहार का एक प्रतिशत से ज्यादा नहीं होना चाहिए।
- यदि पशुओं को पहली बार यूरिया मिश्रित आहार दे रहे हैं तो उन्हें आहार में पहले नमक अवश्य देना चाहिए फिर धीरे–धीरे यूरिया मिश्रित आहार शुरू करना चाहिए। फिर इसे धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए। पशुओं को लगभग 0.1 ग्राम / कि.ग्रा. शरीर भार तक यूरिया मिश्रित आहार प्रतिदिन दिया जा सकता है। 400 किलोग्राम की वजन की गाय को प्रतिदिन 35 से 40 ग्राम यूरिया, दिये जाने वाले कुल आहार मे दिया जा सकता है।

उपरोक्त लिखित बातों को ध्यान मे रखकर पशुपालक अपने पशुओं में यूरिया विषाक्तता होने पर प्राथमिक उपचार तुरंत उपलब्ध करवा सकते है एवं नजदीकी पशुचिकित्सालय के कुशल पशुचिकित्सक से तुरंत सम्पर्क कर अपने पशुओं की उचित चिकित्सा अवश्य करवानी चाहिए।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)
3. निःशुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

पशुओं में मूत्र एवं मूत्र मार्ग की जाँच सम्बंधित जानकारी

मनीश शर्मा*, बाबू लाल जांगिड़ एवं तरुण कुमार

पशु चिकित्सा नैदानिक परिसर, पशु चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय,
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुओं के मूत्र मार्ग (यूरिनरी ट्रैक्ट) में संक्रमण या फिर किसी भी तरह की समस्या का होना भविष्य में घातक हो सकता है, जिससे मूत्र करने की क्षमता कम हो जाती है। गुर्दे (किडनी) पशुओं के शरीर में दिन भर खून साफ (रक्त शोधन) करने का काम करते है और मूत्र बनाते हैं। मूत्र मूत्रवाहिनी (युरेटर) से बहते हुए मूत्राशय (यूरिनरी ब्लैडर) तक पहुँचता है और तत्पश्चात् शरीर से वाहर निकल जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में अगर कोई भी बाधा आ जाए जैसे कि

- मूत्र कम बनना
- ठंड के मौसम में पशु का कम पानी पीना
- पोषक तत्वों की कमी या फिर उनका सही अनुपात में नहीं होना
- आहार में चारे से अधिक अनाज की मात्रा होना
- मूत्र मार्ग में संक्रमण जैसे कि जीवाणु (इशरीकिया कोलाई, क्लॉस्ट्रीडियम, प्रोटियस, स्टेफिलोकोकस, क्लेबसिएला), विषाणु (वायरस) या फिर फफूंदी हो जाए तथा पथरी इत्यादी का होना।

इस स्थिति में प्रयोगशाला (लेबोरेटरी) में मूत्र की जाँच करके इन कारणों का पता लगाया जा सकता है। मूत्र रुकने की समस्या किसी भी आयु के पशुओं में हो सकती हैं लेकिन यह समस्या छोटी उम्र के पशुओं में ठण्ड के मौसम में अधिक मिलती है।

पशुओं में मूत्र रुकने की समस्या के लक्षण :

पशुओं में मूत्र रुकने की वजह से कई तरह के लक्षण देखने को मिलते हैं। जिनमे मुख्य लक्षण निम्न हैं जैसे कि

- शुरूआत में ही पशु कम मात्रा में या थोड़ी–थोड़ी देर में मूत्र करते हैं।
- बेचैनी आने लगती है।
- मूत्र के पूरी तरह से रुक जाने के कारण पेट फूलना और सही समय रहते अगर इलाज ना किया जाए तो मूत्राषय के फटने से या संक्रमण से मृत्यु भी हो सकती है।

पशुओं में मूत्र एकत्रित करने की विधि :

पशुपालकों को मूत्र एकत्रित करने से पहले निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए। जैसे कि–

- नमूना लेने की शीशी बिल्कुल साफ और जीवाणुरहित होनी चाहिए।
- यदि संभव हो तो प्रातःकालीन जव पशु मूत्र करता है तो मूत्र के बीच की धार का नमूना जाँच के लिए भेजना चाहिए।

पशुओं में मूत्र की जाँच करने की विधि :

प्रयोगशाला में मूत्र की जाँच करने की अनेक विधियाँ हैं। फलस्वरूप इनके परिणाम से अनेक बिमारियों का पता लगाया जा सकता है।

1. **देख कर जाँच करना (फिजिकल एग्जामिनेशन):** प्रयोगशाला में पैथोलॉजिस्ट या फिर डॉक्टर्स मूत्र को देख कर कई असमानताओं का पता लगाते हैं। जैसे कि–

- मूत्र का धुंधला दिखाई देना।
- मूत्र का रंग हल्का या गहरा पीला, लाल, भूरे रंग का होना खून की उपस्थिति के होने का संकेत देता है।

2. **रासायनिक परीक्षण (केमिकल एग्जामिनेषन):** रासायनिक परीक्षण के माध्यम से मूत्र में पाए जाने वाले असामान्य पदार्थों का पता लगाया जाता है। मूत्र की जाँच करने के लिए प्रयोगशाला में डिपस्टिक टेस्ट किया जाता है जिसमे स्ट्रिप को मूत्र में डुबाने से उसका रंग बदलने के अनुसार कई तरह के पदार्थों का सामान्य से अधिक मात्रा में होने का पता लगाया जा सकता है जैसा कि मूत्र में खून, ग्लूकोज, प्रोटीन, कीटोन बॉडीज, पीएच, बिलीरुबिन, नाइट्रेट आदि का पता लगाया जा सकता है।

*Corresponding author: drmaneeshvet@gmail.com

3. **सूक्ष्मदर्शी परीक्षण (माइक्रोस्कोपिक एग्जामिनेशन):** इस प्रशिक्षण के माध्यम से मूत्र में पाए जाने वाले असामान्य कारकों का पता लगाकर बीमारी का निधान किया जाता है। मूत्र को एक विधि द्वारा सेंट्रीफ्यूज करके और कुछ बूंदों को माइक्रोस्कोप में देख कर कई चीजों का पता लगाया जा सकता है जैसे कि–

- लाल या सफेद रक्त कोशिकाओं का मूत्र में होना कई असमानताओं को वताता है जैसे की गुर्दे की बीमारी, मूत्राषय में रक्त विकार होना।
- चमकते क्रिस्टल्स का होना गुर्दे में पथरी के होने का संकेत देते हैं।
- **संक्रामक बैक्टीरिया (जीवाणु), फंगस (फफूँदी), यीस्ट की उपस्थिति :** अगर कोई भी संक्रमण का पता करना हो तो मूत्र के नमूने को कल्चर करके उसमे मात्रा का पता लगाया जा सकता है।
- एपिथेलियल सेल्स में असमानताएं होना यूरिनरी ट्रैक्ट में इन्फेक्शन या फिर कैंसर के होने का संकेत देता है।

डायग्नोस्टिक इमेजिंग से से पशुओं में मूत्र मार्ग की जाँच :

इस विधि का उपयोग करके गुर्दे या मूत्राशय में होने वाले कैंसर का पता लगाया जा सकता है। इसके अलावा किसी भी असामान्य विकास का पता चलता है। इसमें अल्ट्रासाउंड, या एक्स–रे का उपयोग करके मूत्र मार्ग का आंकलन किया जाता है। अल्ट्रासाउंड जांच में ध्वनि तरंगों की मदद से किडनी के अंदर गांठ, जो की कैंसर युक्त है या फिर उसमें कोई द्रव तो नहीं भरा है उसका पता भी पशुचिकित्सालय में अल्ट्रासाउंड, या एक्स–रे की मशीनों द्वारा लगाया जा सकता है।

मूत्र मार्ग में संक्रमण का उपचार :

यदि संक्रमण का सही पता चल जाए तो जीवाणु के लिए उचित एंटीबायोटिक दवाएं, विषाणु के लिए उचित एंटीवायरल दवाओं और फफूंदी के लिए उचित एंटीफंगल नामक दवाओं से उपचार किया जाता है। मूत्र में क्रिस्टल्स का मिलना पथरी के होने का संकेत है। यदि पेशाब निकलने में समस्या आए तो ऑपरेष्शन भी करवाना पड़ सकता है।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

गाँठदार त्वचा रोगः बचाव एवं रोकथाम

अमनदीप, दिपिन चंद्र यादव* एवं देवेंद्र सिंह बिढाण
पशु उत्पादन प्रबंधन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

लंपी वायरस कैप्रिपॉक्स फैमिली का वायरस है। ये बीमारी काटने वाली मक्खियों, मच्छरों, जूं, दूषित दाने और पानी से फैलता है। यह एक संक्रामक बीमारी है जो संक्रमित जानवर के सीधे संपर्क में आने से दूसरे जानवर को भी हो जाता है। ये रोग पशुओं से इंसानों में नहीं फैलता है। हाल ही में, भारत के कुछ राज्यों में मवेशियों में गाँठदार त्वचा रोग यानी 'लंपी स्किन डिजीज' के संक्रमण के मामले सामने आए हैं। यह रोग भैसों की तुलना में गायों में अधिक पाया जाता है। यह सभी उम्र के पशुओं में फैलता है परन्तु वयस्क जानवरों की तुलना में छोटे बछड़े/बछड़ियों में फैलने की सम्भावना अधिक होती है।

सबसे पहली बार यह रोग 1929 में जाम्बिया में प्रकाश में आया था और धीरे–धीरे कई अफ्रीकी देशों में फैला। साल 2012 के बाद से ये बीमारी यूरोप, रूस और कजाकिस्तान के जरिए तेजी से फैल रहा है। भारत में यह बीमारी पहली बार 12 अगस्त 2019 को ओडिशा राज्य में पता चली थी।

लक्षण :

- शरीर का तापमान काफी बढ़ जाना
- भूख ना लगना
- पूरे शरीर पर जगह–जगह गांठ बन जाना जिनका आकार 2–5 सेमी होता है, जो खासकर गर्दन, थूथन, नासिका, जननांग, आँख की पलकों, थन, पेट और पूंछ पर पायी जाती हैं।
- गांठे गोल और उभरी हुई होती हैं जो अपने अपने चरम स्तर तक पहुँचने के बाद शरीर पर अल्सर जैसे घाव बना देती है । इन घावों में संक्रमण की वजह से मवाद पड़ जाता है और कभी–कभी मक्खियों के कारण कीड़े भी पड़ जाते हैं।
- पशु का गर्भपात हो जाना
- दुधारू पशुओं के दूध उत्पादन में कमी
- लंबे समय तक बांझपन
- बैलों की जनन क्षमता में कमी

रोकथाम और नियंत्रण :

- संक्रमित जानवर को बाकी जानवरों के संपर्क में आने से रोका जाए।
- फार्म और परिसर में सख्त जैव सुरक्षा उपायों को अपनाएं।
- नए जानवरों को अलग रखा जाना चाहिए।
- त्वचा की गांठों और घावों की जांच की जानी चाहिए।
- प्रभावित क्षेत्र से जानवरों की आवाजाही से बचें।
- प्रभावित जानवर को चारा, पानी और उपचार के साथ झुंड से अलग रखा जाना चाहिए, ऐसे जानवर को चरने वाले क्षेत्र में नहीं जाने देना चाहिए।
- उचित कीटनाशकों का उपयोग करके मच्छरों और मक्खियों के काटने पर नियंत्रण। इसी तरह नियमित रूप से वेक्टर विकर्षक का उपयोग करें, जिससे वेक्टर संचरण का जोखिम कम हो जाएगा।
- फार्म के पास वेक्टर प्रजनन स्थलों को सीमित करें जिसके लिए बेहतर खाद प्रबंधन की आवश्यकता होती है।
- जिन क्षेत्रों में यह बीमारी फैली हो वहां मवेशी मेले, जानवरों से जुड़े शो और पशुधन बाजार जैसी गतिविधियों पर प्रतिबंध लगा दिया जाना चाहिए।
- अगर इस बीमारी से किसी जानवर की मृत्यु हो जाए तो उसके शव को खुला नहीं छोड़ना चाहिए बल्कि उसे मिट्टी के अंदर गाड़ देना चाहिए, और उसके बाद उस पूरे इलाके को कीटाणुनाशक द्वारा स्वच्छ किया जाना चाहिए।
- गॉट पॉक्स वैक्सीन एक फ्रीज ड्राय, लाइव एटेन्युएटेड वैक्सीन उपलब्ध है जो बीमारी को नियंत्रित करने और फैलने से रोकने में मदद करता है। निर्माताओं के

*Corresponding author: dc2008v18b@gmail.com

निर्देशों के अनुसार शेष जानवरों का टीकाकरण करें।

- गाँठदार त्वचा रोग का नियंत्रण और रोकथाम चार रणनीतियों पर निर्भर करता है, जो निम्नलिखित हैं 'आवाजाही पर नियंत्रण (क्वारंटीन), टीकाकरण, संक्रमित पशुओं का वध और प्रबंधन'।

उपचार :

- चूँकि यह एक ऐसी बीमारी है जो वायरस के कारण होता है, ऐसे में इसका कोई खास इलाज अभी तक नहीं मिल पाया है। अभी मौजूदा वक्त में टीकाकरण ही इसके रोकथाम और नियंत्रण का सबसे प्रभावी साधन है।
- घावों को इन्फेक्शन से बचाने के लिए एंटीबायोटिक दवाएं और घावों में कीड़े ना पड़े इसके लिए इनकी साफ–सफाई काफी जरूरी होती है। त्वचा के घावों को 2 प्रतिशत सोडियम हाइड्रॉक्साइड, 4 प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट और 2 प्रतिशत फॉर्मेलिन द्वारा एंटीसेप्टिक समाधान के साथ इलाज किया जा सकता है।
- 250 ग्राम फिटकरी को 50 लिटर पानी में मिक्स करके हाथो से या हैंड पंप की मदद से पशु पर छिड़काव करे।
- मुठ्ठी कुम्पीर की पत्तियां, 10 लहसुन की कली, 1 मुठ्ठी नीम की पत्तियां, 1 मुठ्ठी मेहंदी की पत्तियां, 500 मिली. नारियल या तिल का तेल और 20 ग्राम हल्दी पाउडर के साथ 1 मुठ्ठी तुलसी के पत्ति यां लाकर रख लें। सभी पत्तियों को हल्दी के साथ पीसकर मिश्रण बनायें और नारियल या तिल के तेल में उबाल लें। इस मिश्रण को ठंडा करने के बाद मवेशियों को नहरालकर उनके घाव पर लगायें।
- 10 पान के पत्ते, 10 ग्राम काली मिर्च और 10 ग्राम नमक को पीसकर एक पेस्टर बना लें और इसमें आवश्यकता अनुसार गुड़ मिला लें। इस मिश्रण को पशु को थोड़ी–थोड़ी मात्रा में पशु को खिलाएं।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

मवेशियों में तीन दिवसीय ज्वर (इफिमेरल बुखार)

राजेंद्र यादव[1], अमित सांगवान[1] एवं नीलेश सिंधु[2]

[1]हरियाणा पशु विज्ञान केंद्र, महेंद्रगढ़; [2]शैक्षणिक पशु–चिकित्सा विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

परिचय :

मुख्यतः डेयरी पशुओं में होने वाला तीन दिवसीय बुखार (एफिमेरल फीवर) एक हल्के प्रकार का विषाणु जनित रोग है। जो कि प्रभावित पशु के शरीर का उच्च तापमान, मांसपेशियों में जकड़न तथा पैरों से लंगड़ापन इत्यादि के रूप में परिलक्षित होता है। गौ – वंशीय पशुओं में यह रोग ज्यादा पाया जाता है। गाय एवं भैंस प्रजाति के पशुओं में यह रोग 6 माह से 2 वर्ष की आयु में ज्यादा देखा गया है। गाय एवं भैंस में इस रोग की प्रभावन दर 80–90 प्रतिशत तक हो सकती है, परन्तु रोगग्रस्त पशुओं में मृत्यु दर बहुत ही कम या शून्य होती है।

कारण :

पशुओं में तीन दिवसीय बुखार एक कीटों द्वारा फैलने वाला विषाणु जनित वाला रोग है। यह रोग रेहबड़ो समूह के विषाणु के कारण होता है। इस विषाणु का सम्बन्ध मनुष्यों में होने वाले डेंगू बुखार से होता है। मवेशियों में इस बुखार का फैलाव खून चूसने वाले कीटों से होता है। पशुओं में यह छुआछूत का रोग नहीं है बल्कि कुछ विशेष प्रकार की मक्खियों एवं मच्छरों से फैलता है। इसलिए गर्म एवं आर्द्र जलवायु वाले इलाकों में इस रोग का प्रकोप अधिक देखने को मिलता है, क्योंकि इन क्षेत्रों में मक्खी एवं मच्छरों का प्रकोप अधिक होता है।

रोग के लक्षण :

तीन दिवसीय बुखार के विषाणु के पशु के शरीर में प्रवेश करने के 2 से 10 दिन के उपरांत इस रोग के लक्षण दिखाई देना शुरू होते हैं । इस रोग से प्रभावित पशुओं में शुरूवात में अचानक तेज बुखार (103–107° F), चारा–पानी कम कर देना एवं दुधारू पशुओं में दूध उत्पादन में कमी देखने को मिलती है । बुखार की वजह से पशु की साँस तेज चलती है एवं आँखों तथा नाक से पानी आने लगता है। रोगग्रस्त पशु की मांसपेशियों खासकर पैरों में सूजन, जकड़न एवं कम्पन जैसे लक्षण सामान्य तौर पर देखने को मिलते हैं। प्रभावित पशु में पैरों से लंगड़ापन एक मुख्य लक्षण के रूप में देखने को मिलता है, जो कि एक या एक से अधिक पैरों में देखा जा सकता है। अत्यधिक प्रभावित पशु में पशु को खड़ा होने एवं चलने में परेशानी आ सकती है एवं पशु जमीन पर बैठ जाता है अथवा लेट जाता है। ग्याभिन पशुओं में गर्भपात भी हो सकता है। सामान्य तौर पर तीन दिन के पश्चात् पशु का बुखार कम होने लगता है एवं पशु अपने दैनिक खानपान को प्राप्त कर लेता है तथा रोग के अन्य लक्षण भी कम होने लग जाते हैं। इसलिए इस रोग को तीन दिवसीय बुखार के नाम से जाना जाता है।

रोग की पहचान :

डेयरी पशुओं में होने वाले तीन दिवसीय बुखार के लक्षण जैसे की उच्च ताप, लंगड़ापन, आँखों एवं नाक से पानी आना, मांसपेशियों में दर्द, जकड़न इत्यादि लक्षण इन पशुओं में होने वाले अन्य कई प्रकार की बिमारियों में भी देखने को मिल सकते हैं। अतः पशुपालकों को चाहिए कि पशुओं में उपरोक्त में से कोई भी लक्षण दिखाई देने पर पशु –चिकित्सक कि सलाह से रोग का समय पर उपयुक्त निदान एवं उपचार करवाना चाहिए। चूँकि इस रोग के लक्षण तीन दिन के पश्चात् धीरे –धीरे काम हो जाते हैं एवं प्रभावित पशु सामान्य अवस्था की ओर लौटने लगता है। इसका मतलब यह नहीं है कि पशुपालक अपने पशुओं में इस रोग का उपचार ही नहीं करवाएं, क्योंकि समय पर उचित ईलाज नहीं मिलने पर प्रभावित पशु में अन्य समस्याएं भी हो सकती हैं, जैसे कि दुधारू पशु के दूध उत्पादन में भारी गिरावट, पशु में थैनेला रोग होने की संभावना बढ़ जाना, पशु में नए दूध ना होने की समस्या होना, पशु के ज्यादा देर तक बैठे या लेटे रहने से निमोनिया होना, पशु को थकावट होना एवं कामकाजी पशुओं में काम करने की क्षमता कम हो जाना इत्यादि। अतः इस रोग की समय पर पहचान, निदान एवं

उपचार बहुत आवश्यक है।

उपचार :

पशुओं में होने वाला तीन दिवसीय बुखार एक विषाणु जनित रोग होने के कारण इसका कोई विशिष्ट उपचार तो उपलब्ध नहीं है। परन्तु इस रोग से प्रभावित पशुओं में लाक्षणिक एवं सहायक चिकित्स्कीय उपचार तथा पशु प्रबंधन में सुधार पशु के स्वास्थ्य लाभ एवं पशुओं में इस रोग से होने वाले अन्य नुकसान को रोकने में काफी लाभकारी सिद्ध होता है। पशु–चिकित्सक इस रोग में ज्वरनाशक एवं मांसपेशियों की जकड़न को रोकने एवं दर्द कम करने की दवाइयों का प्रयोग करते हैं। इस रोग के उपचार के दौरान प्रभावित पशुओं में अन्य विभिन्न प्रकार के द्वितीयक संक्रमणों को रोकने के लिए बहुप्रभावी एंटीबायोटिक दवाओं का भी प्रयोग किया जाता है। इनके साथ–साथ स्वास्थ्यवर्धक दवाओं जैसे शारीरिक टॉनिक एवं विटामिनों का प्रयोग भी काफी लाभकारी सिद्ध होता है।

रोग की रोकथाम एवं बचाव :

चूँकि मवेशी पशुओं में तीन दिवसीय बुखार (इफिमेरल फीवर) से बचाव के लिए कोई टीका (वैक्सीन) तो उपलब्ध नहीं है। परन्तु पशुपालक अपने पशुओं को इस रोग से बचाने के लिए निम्नलिखित तरीके एवं सावधानियां अपना सकते हैं–

1. जैसा कि यह रोग एक विभिन्न बाह्य परजीवियों (मक्खी एवं मच्छर) के काटने से संचरित तथा फैलने वाला रोग है। अतः पशुपालक अपने पशुओं को इन विशेष प्रकार के मक्खी एवं मच्छरों से बचा कर रखें।
2. चूँकि पशुओं में तीन दिवसीय बुखार का प्रकोप गर्म एवं आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में ज्यादा होता है, क्योंकि इन क्षेत्रों में इस रोग के संवाहक परजीवियों की संख्या ज्यादा पाई जाती है। अतः पशुपालकों को ऐसी जलवायु वाले क्षेत्रों में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। इन क्षेत्रों में पशुपालक अपने पशुओं को इन परजीवियों से बचाने के लिए मच्छरदानी अथवा नेट का इस्तेमाल भी कर सकते हैं।
3. पशुपालकों को चाहिए कि पशु में इस रोग के उपर्युक्त में से कोई भी लक्षण दिखाई देने पर तुरंत नजदीकी पशु–चिकित्सक की सलाह से उचित निदान एवं पूरा उपचार करवाएं।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

शीत लहर के दौरान पशुधन के लिए प्रबंधन गतिविधियाँ

दिव्या अग्निहोत्री*, तरुण कुमार एवं स्नेह लता चौहान
पशु चिकित्सा नैदानिक परिसर
लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

दिसंबर, जनवरी और फरवरी के महीने भारत के उत्तरी भागों में बहुत ज्यादा ठंडे होते हैं। उत्तर भारत में हरियाणा सहित अधिकांश राज्य इन महीनों के दौरान शीत लहर का अनुभव करते हैं। मैदानी इलाको में जब न्यूनतम तापमान 10 डिग्री सेल्सियस या उससे कम हो और लगातार दो दिनों तक सामान्य से 4–5 डिग्री सेल्सियस से कम हो तब इसे शीत लहर की स्थिति कहा जाता है। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान के अनुसार उत्तरी भारत के 'कोर शीत लहर क्षेत्र' में पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि राज्य शामिल हैं। उत्तर भारत के मैदानी इलाकों में शीत लहरों के साथ कोहरे की स्थिति आम हैं, जो सर्दियों में कई दिनों या हफ्तों तक चलती हैं। शीत लहरें मनुष्य और पशुओं दोनों के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए हानिकारक हैं। जीवन हानि के अलावा शीत लहर और ठंड का मौसम कृषि, जल आपूर्ति, पशुओं के भोजन और आश्रय सुविधाओं के प्रबंधन गतिविधियों को प्रभावित करती है।

शीत लहर का प्रतिकूल प्रभाव कमजोर व दुर्बल पशुओं , युवा, ग्याबन और वृद्ध पशुओं में अधिक देखा जाता है। इसलिए पशुओं को शीत लहर के प्रतिकूल प्रभावों से बचाने के लिए आवश्यक प्रबंधन व्यवस्था करने के साथ–साथ अतिरिक्त सावधानी बरतना जरूरी है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि पशुपालक अपने क्षेत्र में मौसम के पूर्वानुमान के बारे में जानकारी रखें। ठंडे तापमान में जीवित रहने और अत्यधिक ठंड की स्थिति में, पशुओं के शरीर के तापमान को बनाए रखने के लिएए पशुओं के लिए, पर्याप्त चारे और पीने योग्य पानी की उपलब्धता होना जरूरी है। पशुपालक यह सुनिश्चित करें कि पशुओं के उपभोग के लिए भंडारित चारा अच्छी गुणवत्ता वाला और पौष्टिक हो। ठंडे मौसम की स्थिति के दौरान पशुओं के शरीर का तापमान बनाए रखने के लिए राशन में वृद्धि की जानी चाहिए। पशुओं के लिए पीने योग्य स्वच्छ और पर्याप्त पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए। अत्यधिक ठंड के मौसम में पशुओं को पशुशाला के भीतर आश्रय में रखना चाहिए। ताजी हवा के लिए प्रवेश सुनिश्चित करते हुए पशुघर की खिड़कियां और दरवाजे बंद रखनी चाहिए। पशुघर के दरवाजों और खिड़कियों को प्लास्टिक की चादरों , टाटों और प्लास्टिक की चादरों से ढक दें। पशुओं के शरीर को कंबल या बोरी इत्यादि से ढक कर रखें।

ताजी हवा के लिए प्रवेश सुनिश्चित करते हुए पशुघर की खिड़कियां और दरवाजे बंद रखनी चाहिए। पशुघर के दरवाजों और खिड़कियों को प्लास्टिक की चादरों, टाटों और प्लास्टिक की चादरों से ढक दें। पशुओं के शरीर को कंबल या बोरी इत्यादि से ढक कर रखें। उसी प्रकार कमजोर और बीमार पशुओं को ठंड से बचाने के लिए, बोरी या कंबल से ढक देना चाहिए। विशेषकर रात्रि के समय पशु फार्म के अंदर पशु फार्म के अंदर प्रकाश स्रोत (कृत्रिम रोशनी) की उपलब्धता और ताप व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिए। पशुओं के बिस्तर को जितना संभव हो उतना सूखा और साफ रखें क्योंकि अमोनिया पशुधन की श्वसन परत को प्रभावित कर सकता है जिससे निमोनिया पैदा करने वाले बैक्टीरिया और वायरस की संभावना बढ़ जाती है। बुखार, भूख न लगना, पैर, पूंछ, कान जैसे अंग ठंडे होना, खांसी, आंखों और नाक से पानी आना, सांस फूलना, सुस्ती आदि जैसे लक्षणों पर तुरंत ध्यान दे।

इस प्रकार पशुधन को प्रतिकूल जलवायु प्रभावों से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि पशुपालक अपने पशुधन के लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन, पेयजल, आश्रय, ईंधन, जरूरी दवाइयां और आवश्यक चिकित्सा सुविधाओं आदि की उचित व्यवस्था करें।

*Corresponding author: dr_divya_agnihotri@luvas.edu.in

स्वच्छ दूध उत्पादन का महत्व, उद्देश्य एवं उपाय

राजेंद्र यादव[1], अमित सांगवान[1] एवं पंकज कुमार[2]*

[1]हरियाणा पशु विज्ञान केंद्र, महेंद्रगढ़; [2]पशु रोग जाँच प्रयोगशाला, रोहतक

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

दूध मानव जाति के लिए एक आदर्श एवं सम्पूर्ण खाद्य आहार है तथा प्राचीन समय से ही दूध एवं दूध से बने हुए अन्य पदार्थ मनुष्य के भोजन के अभिन्न अंग रहे हैं। दूध उत्पादन एवं खपत के मामले में भारत देश का पूरे विश्व में पहला स्थान है तथा पूरे विश्व का लगभग 16 प्रतिशत दूध भारत में उत्पादित होता है। परन्तु हमारे देश में दूध उत्पादन का कारोबार ज्यादातर एकल किसान या फिर छोटी–छोटी इकाइयों के रूप में असंगठित क्षेत्र है। भारत में दूध उत्पादन 3.3 प्रतिशत जबकि दूध की खपत 5 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रही है। अतः हमारे देश में असंघठित दूध उत्पादन का क्षेत्र, पशुपालकों में जानकारी का अभाव, दूध की खपत अथवा माँग का दूध उत्पादन की दर से ज्यादा बढ़ना, साफ –सफाई का अभाव एवं अंधाधुंध दवाइयों का पशुओं में इस्तेमाल करना इत्यादि मुख्य कारण है जो कि स्वच्छ दूध उत्पादन में बहुत बड़ी बाधाएँ है। विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार स्वच्छ दूध को "स्वस्थ दुधारू पशुओं के थनों से निकले हुए दूध जिसको कि साफ–सुथरे बर्तनों में निकाला एवं इकट्ठा किया जाता है तथा जो कि धूल–मिट्टी, गंदगी, पशु के मल–मूत्र, मक्खियों, अपशिष्ट पदार्थों, बाहरी पानी एवं दवाओं के अवशेषों से मुक्त होता है और इसमें जीवाणुओं कि संख्या अपेक्षाकृत काफी कम होती है जो कि मनुष्य के लिए रोगजनक भी नहीं होते है" के रूप में परिभाषित किया जाता है। स्वच्छ दूध उत्पादन कि कमी दूध एवं दूध से बने पदार्थों की गुणवत्ता को प्रभावित करती है तथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से यह मनुष्य की सेहत के साथ भी एक खिलवाड़ है।

स्वच्छ दूध का उत्पादन का महत्व एवं उद्देश्य :

- संपूर्ण रूप से पौष्टिक दूध का उत्पादन करना।
- धूल–मिट्टी, गंदगी, पशु के मल–मूत्र, बाहरी अपशिष्ट पदार्थ, बाहरी पानी एवं दवाइयों के अवशेषों रहित दूध का उत्पादन करना।
- प्राकृतिक सुगंध एवं स्वाद वाला दूध उत्पादन करना।
- ज्यादा समय तक अच्छे रख रखाव वाले एवं खराब नहीं होने वाले दूध का उत्पादन करना।
- जीवाणु रहित या बहुत कम जीवाणुओं वाला तथा हानिकारक जीवाणुओं रहित दूध का उत्पादन करना।
- स्वच्छ दूध के साथ–साथ दूध से बने हुए पदार्थों की गुणवत्ता एवं रख–रखाव का समय बढ़ाना।
- मनुष्यों में दूध एवं दूध से बने हुए पदार्थों जनित रोगों की रोकथाम करना।
- स्वच्छ दूध उत्पादन के द्वारा दूध एव दूध से बने हुए पदार्थों की मूल्य वृद्धि द्वारा पशुपालकों की आय में बढ़ोतरी करना।
- स्वच्छ दूध के तरीके अपनाकर पशुओं के साथ होने वाली क्रूरता की रोकथाम करना।
- वैज्ञानिक एवं अत्याधुनिक तरीकें से पशुपालन करके स्वच्छ दूध उत्पादन को बढ़ावा देना।

अस्वच्छ दूध उत्पादन के कारण एवं स्त्रोत :

- दूधारू पशु का स्वयं का किसी भी प्रकार के रोग से ग्रस्त होना। पशुओं में होने वाला थनैला रोग स्वच्छ दूध उत्पादन में सबसे बड़ी बाधा है।
- दूध निकालते समय दूध की शुरूआती 2–3 धारें पशु के थनों के छिद्र पर पनपने वाले जीवाणुओं सहित हो सकती है तथा स्वच्छ दूध उत्पादन को प्रभावित करती है।
- पशु का दूध निकालने वाली जगह पर वातावरण में धूल–मिट्टी या अन्य किसी भी प्रकार की गंदगी का होना अस्वच्छ दूध उत्पादन को बढ़ावा देता है।
- दूध निकालने से पहले पशु की साफ–सफाई न होना, खासकर पशु के शरीर के पिछले हिस्से, पैरों, पूंछ इत्यादि का साफ न होना।
- दूध निकालते वक्त पशु द्वारा गोबर अथवा पेशाब कर देना।

*Corresponding author: drpankaj42@gmail.com

- दूध निकालते समय दूधशाला में उचित रोशनी का अभाव होना।
- दूध निकालने वाले व्यक्ति का खुद की साफ–सफाई का ध्यान ना देना एवं बिना हाथ धोए तथा बिना साफ–सुथरे कपड़ों के दूध निकालना।
- दूध निकालने से पहले पशु की लेवटी एवं थनों को ढंग से साफ न करना एवं ढंग से ना धोना।
- दूध निकालने वाली मशीन की साफ–सफाई का ध्यान नहीं रखना।
- जिन बर्तनों में दूध निकालते एवं इकठ्ठा करके रखते है उनका स्वच्छ नहीं होना भी स्वच्छ दूध उत्पादन में एक महत्वपूर्ण बाधा है।
- दूध में जान–बूझकर अथवा अज्ञानतावश किसी भी तरह की मिलावट करना अस्वच्छ दूध उत्पादन को बढ़ावा देता है।

स्वच्छ दूध उत्पादन के उपाय :

- स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए दुधारू पशु का पूर्ण रूप से स्वस्थ होना अत्यंत आवश्यक है खासकर पशु को थनैला रोग से मुक्त होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं है तो पशुपालक को चाहिए कि वो अपने पशु–चिकित्सक से सम्पर्क करके अपने पशुओं का उचित उपचार करवाएँ।
- दूध निकालते समय थनों से निकलने वाली शुरूआती 2–3 धारें अलग से किसी बर्तन मे निकाल लेनी चाहिए तथा पूरे दूध मे नहीं मिलानी चाहिए।
- दूध निकालने कि जगह का वातावरण पूर्ण रूप से धूल–मिट्टी एवं किसी भी प्रकार की गंदगी रहित होना चाहिए। अगर धूल उड़ रही हो तो थोड़ा पानी का छिड़काव कर देना चाहिए।
- दूध निकालने से पहले पशु के शरीर को खासकर कि पिछले पैरों, पुंछ, लेवटी एवं थनों को अच्छी तरह से पानी से धोकर साफ करना चाहिए।
- अगर मशीन से दूध निकालते है तो दूध निकालने वाली मशीन कि साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए एवं समय–समय पर मशीन को जीवाणु रहित करने के वैज्ञानिक तरीकों का भी इस्तेमाल करना चाहिए।
- दूध निकालते वक्त दूधशाला में रोशनी का उचित प्रबंध होना चाहिए ताकि गलती से भी दूध में किसी प्रकार का संक्रमण या मिलावट ना हो।
- दूधशाला में किसी भी प्रकार के बाह्य परजीवी जैसे कि मक्खी, चीचड़ी, मच्छर इत्यादि का प्रकोप ना हो।
- दूध निकालने वाले व्यक्ति को खुद की साफ–सफाई खासकर हाथों एवं कपड़ों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- दूध निकालने एवं इकठ्ठा करने वाले बर्तनों को रोज अच्छी तरह से साफ करना चाहिए एवं समय–समय पर जीवाणु नाशक तरीकों का भी इस्तेमाल करना चाहिए।
- दूध मे जान–बूझकर या अन्य किसी भी कारण की वजह से किसी भी प्रकार की कोई भी मिलावट ना करें।
- किसी भी प्रकार की कोई शंका हो तो अपने नजदीकी पशु–चिकित्सक से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए।

बटेर पालन एवं इसकी उपयोगिता

महावीर चौधरी[1]*, विक्रम जाखड़[2] एवं सरिता[3]

[1]विस्तार विशेषज्ञ, पशु विज्ञान केंद्र, सिरसा, लुवास, [2]सहायक प्राध्यापक, पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, पशु चिकित्सा विद्यालय, रामपुरा फूल, गढ़वासु, [3]विस्तार विशेषज्ञ, विस्तार शिक्षा निदेशालय

बटेर छोटे पक्षी होते हैं जो व्यावसायिक रूप से अण्डे और मांस के लिए पाले जाते हैं। भारत में इन पक्षियों का व्यावसायिक पालन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है क्योंकि अन्य पक्षियों की तुलना में बटेर पालन में निवेश और रख रखाव में बहुत कम खर्चा आता है। मुर्गी के अंडे की तुलना में बटेर के अंडे बहुत पौष्टिक होते हैं। अतः मनुष्य आहार को संतुलित करने के लिए बटेर का मांस व अंडे बहुत उपयोगी हैं। जापानी बटेर दुनिया में बहुत प्रसिद्ध है और बटेर की पहली व्यावसायिक खेती जापान में शुरू हुई थी और अब यह पूरी दुनिया में फैल गई है। बटेर पालन का मुख्य लाभ यह है कि इन पक्षियों को अन्य कुक्कुट पक्षियों व पशुपालन के साथ पाला जा सकता है जिससे किसानों की आमदनी बढ़ सकती है। भारत में जनसंख्या अधिक होने के कारण मांस की आवश्यकता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि बटेर पालन निकट भविष्य में कुक्कुट पालन की तरह ही लोकप्रिय होगा।

बटेर पालन के मुख्य लाभ व विषेशताएं :

- बटेर पक्षियों को अन्य पक्षियों की तुलना में कम जमीन की आवश्यकता होती है।
- बटेर की खेती को स्थापित करने के लिए कम निवेश की आवश्यकता होती है और श्रम लागत बहुत कम होती है।
- बटेर 5 सप्ताह के समय में बेचने के लिए तैयार हो जाती है।
- बटेर लगभग 6 से 7 सप्ताह की उम्र में अंडे देना शुरू कर देती है।
- बटेर प्रति वर्ष लगभग 300 अंडे देती है जिसे अंडे देने की बहुत उच्च दर माना जाता है।
- बटेर के अंडे में कोलेस्ट्रॉल कम होता है और इसका मांस मुर्गे से ज्यादा स्वादिष्ट होता है।
- बटेर के अंडे और मांस बच्चों के शरीर और मस्तिष्क को बढ़ावा देते हैं।
- बटेर के अंडे का मांस गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए एक पौष्टिक आहार है।
- बटेर के मांस में वसा की मात्रा कम होती है, इसलिए बटेर का मांस उक्त रक्तचाप के रोगियों के लिए अच्छा होता है।
- बटेर पक्षी आकार में छोटे होते हैं और एक वयस्क बटेर का वजन लगभग 200 ग्राम होता है।
- बटेर के अंडे का वजन लगभग 10 से 15 ग्राम होता है।
- बटेर के अंडे बहुरंगी होने के कारण सुन्दर लगते हैं। दूसरे पक्षियों की तुलना में बटेर रोगों के प्रति बहुत प्रतिरोधी हैं इसलिए बटेर में दवाइयों का खर्चा कम होता है।
- बटेर के अंडे सेने के लिए इनक्यूबेटर या बरूडर मुर्गियों का उपयोग किया जाता है क्योंकि वे अपने आपसे अंडे नहीं सेते हैं। बटेर के अंडे का ऊष्मायन समय लगभग 15 से 18 दिनों का होता है।

बटेर पालन में आवास व्यवस्था

1. **गहरे कूड़ेदान प्रणाली**– चूंकि बटेर कम जगह घेरते हैं इसलिए लगभग 6 बटेरों को 1 वर्ग फुट जगह में दो सप्ताह तक पाला जा सकता है और उन्हें पिंजरे की व्यवस्था में ले जाया जा सकता है। शरीर का वजन अच्छा होने के लिए अनावश्यक भटकने से बचाना चाहिए।
2. **पिंजरा प्रणाली**– पहले 2 हफ्तों के लिए 3 फीट ग 2.5 फीट × 1.5 फीट के पिंजरे का आकार लगभग 100 बटेरों को समायोजित कर सकता है। 3 से 6 सप्ताह तक 4 फीट×2.5 फीट×1.5 फीट के पिंजरे के आकार

*Corresponding author: drmahaveersihag@gmail.com

में 50 बटेरें आ सकती हैं। पिंजरा पालन प्रणाली में प्रत्येक इकाई की लंबाई लगभग 6 फीट और चौड़ाई 1 फीट होनी चाहिए। इसे 6 उप–इकाइयों में विभाजित किया जाना चाहिए। यदि जगह की कमी है, तो पिंजरों को 5 स्तरों तक ऊँचा रखा जा सकता है। किसी भी पंक्ति में 4 पिंजरे तक हो सकते हैं। पिंजरे की तली में पक्षियों के मल को साफ करने की अनुमति होनी चाहिए, इसके लिए पिंजरे के तल को हटाने योग्य लकड़ी की प्लेट के साथ तय किया जाना चाहिए। वाणिज्यिक बटेर पालन के लिए प्लास्टिक के पिंजरे सबसे सुविधाजनक हैं। प्रजनन के लिए पांच मादा पक्षियों के लिए एक नर रखा जाना चाहिए। सुनिश्चित करें कि अंदर हवा और प्रकाश की उचित व्यवस्था हो।

बटेर पालन में रोग प्रबंधन

सामान्यतः बटेर में रोग अन्य पक्षियों की तुलना में कम होते हैं। हालांकि, उचित देखभाल से मृत्यु दर कम होगी और अच्छा मुनाफा होगा।

बटेर का विपणन / मार्केटिंग

बटेर के विपणन के बारे में चिंता करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इन पक्षियों की स्थानीय बाजार में मांग है। इन्हें विशेष रूप से स्थानीय बाजार में बहुत आसानी और तेजी से बेचा जा सकता है। हालांकि, बटेर की खेती शुरू करने से पहले उचित मार्केटिंग रणनीति की आवश्यकता होती है।

बटेर पालन के लिए लाइसेंस की आवश्यकता

भारत में बटेर पालन व्यवसाय शुरू करने से पहले आपको सरकारी लाइसेंस प्राप्त करना होगा क्योंकि बटेर संरक्षित प्रजाति है। पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन विभाग लाइसेंस जारी करने के लिए जिम्मेदार हैं। लाइसेंस प्राप्त करने की एक निश्चित प्रक्रिया होती है। पूरी जानकारी के लिए कृपया अपने स्थानीय जिला पशुपालन विभाग अधिकारी से संपर्क करें।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु– 930–000–0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

घोड़ियों में हाने वाली प्रजनन संबंधित बीमारियाँ

अनुपमा, रविदत्त* एवं सुखबीर रावीश
मादा पशु एवं प्रसूति रोग विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

परिचयः

घोड़ियों में विभिन्न प्रजनन संबंधी रोग गर्भपात का कारण होते हैं तथा बाद में बाँझपन का कारण बनते हैं, और उन्हें जीवन भर विभिन्न जीवाणुओं के लिए वाहक बना देते हैं और मालिकों के आर्थिक नुकसान का कारण बनते हैं। मुख्य तौर पर पाये जाने वाली बीमारियों का विवरण इस प्रकार से है–

(क) संक्रामक अश्व गर्भाशय शोथ :

टेलोरिला इक्विजेनिटलिस नामक जीवाणु की वजह से घोड़ियों में यह रोग होता है। जिसके परिणामस्वरूप आमतौर पर प्रारंभिक संक्रमण के बाद भ्रूण को नुकसान होता है। वाहक घोड़ी वेस्टिबुलर क्षेत्र में जीवाणु को विशेष रूप से भगषेफ फोसा और साइनस में बंद कर देती है। इस बीमारी के निदान के लिए घोड़ी की जाँच स्वैब, विधि से सैंपल लेकर प्रयोगशाला में एमीज चारकोल माध्यम पर कल्चर करके की जाती है।

(ख) इक्वाइन हरपीज वायरस :

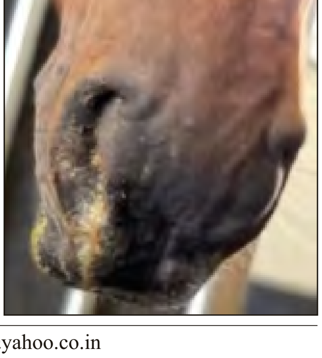

यह घोड़ी में गर्भपात का सबसे आम एकल कारण है। गर्भपात मुख्य रूप से ई.एच.वी–1 और कभी–कभी ई.एच.वी.–4 के कारण होता है। इसका संचरण श्वसन मार्ग द्वारा होता है। अधिकांश गर्भपात (90%) संक्रमण के बाद 60 दिनों के अंदर होते हैं। गर्भपात आमतौर पर गर्भावस्था के 8–9 महीने से लेकर पूर्ण अवधि तक होता है। आमतौर पर दूध या थन के विकास के बिना अचानक गर्भपात होता है। रोग का निदान भ्रूण के ऊतक विकृति विशेषज्ञ द्वारा किया जाता है।

(ग) विशाणु वायरल धमनीशोथ :

यह घोड़े की एक छूत की बीमारी है, जिसे पहली बार 1953 में पहचाना गया था। इस बीमारी के संचरण के मुख्य दो मार्ग हैं, एक यौन मार्ग है तथा दूसरा श्वसन स्त्राव मार्ग। नैदानिक लक्षण 1–5 दिनों के लिए बुखार के साथ–साथ, इन्फ्लूएंजा बीमारी जैसे होते हैं। अवसाद, नाक से स्त्राव, खाना छोड़ना, त्वचा की सूजन, अंगों की सूजन, उदर पेट, अंडकोश, प्रीप्यूस पेरिआर्बिटल क्षेत्रों की सूजन शामिल है। अधिकांश गर्भपात संक्रमण के 23–57 दिनों के बाद होता है।

(घ) इक्वाइन कोइटल एक्जैनथीमा :

यह दोनों लिंगों में होने वाली अपेक्षाकृत सौम्य यौन रोग है जो कि इक्वाइन हरपीज वायरस–3 से होता है। विषाणु का संचरण संपर्क द्वारा और मादा रोग संबंधी जाँच के दौरान होता है। एक बार संक्रमित होने के बाद घोड़ा जीवन भर वाहक बना रहता है। 4–7 दिनों की अवधि के बाद जनन अंगों पर छोटी–छोटी गाँठें बन जाती हैं तथा योनिमुख पर कई घाव विकसित हो जाते हैं, जिससे स्थानीय जलन होती है। अल्सर से जुड़े दर्द के कारण घोड़ी संभोग की अनुमति देने के लिए अनिच्छुक रहती हैं।

*Corresponding author: raviduttvets@yahoo.co.in

(ङ) **डयूरिन :**

यह ट्रिपैनोसोना इक्विपरडम नामक प्रोटोजोवा के कारण होने वाला यौन रोग है। प्रारंभिक संकेत में दोनों लिंगों के बाहरी जननांग पर एक गैर दर्दनाक सूजन होती है। इस रोग में घोड़ी योनि स्त्राव दिखाती है और घोड़े में पैराफिमोसिस होता है। कुछ हफ्तों बाद शरीर की सतह पर 2—10 से.मी. व्यास की उभरी हुई पट्टिकाएँ और पित्ती जैसे धब्बे दिखाई देने लगते हैं।

(च) **घोड़ियों में ब्रूसिलोसिस :**

घोड़ियों में ब्रूसिलोसिस का कारक ब्रूसेला एबार्टस जीवाणु है। घोड़ों में इस जीवाणु के साथ—साथ एक्टिनोमाइस से बोविस जीवाणु पोलएविल और फिसटुलस विदर का कारण बनता है। यह मुख्य रूप से गर्भाशय के अंतिम तिमाही के दौरान नाल की सूजन और बाद में गर्भपात का कारण बनता है। घोड़ी में यह असली यौन रोग है, क्योंकि प्राकृतिक संभोग के दौरान वीर्य गर्भाशय में जमा हो जाता है। बीमारी का मूल स्थान कोरियोन और भ्रूण द्रव है, क्योंकि इसमें एरिथ्रिटोल होता है जो जीवाणु के विकास के लिए जिम्मेदार होता है।

(छ) **इक्वाइन माइकोटिक प्लेसेंटाईटिस :**

इस बीमारी को करने के लिए कई कवक /फंगस जिम्मेदार होते हैं। जैसे म्यूकोर, कैंडिडा, हिस्टोप्लाज्मा कैप्सुलेटम आदि शामिल है। गर्भकाल के अंत की तरफ गर्भपात से पैदा हुए बच्चे में वृद्धि रूकी हुई होती है। इसके साथ—साथ गर्भपात से पैदा हुए बच्चे में लीवर का आकार बढ़ा हुआ मिलता है तथा त्वचा में सूजन मालूम दिखाई पड़ती है।

(ज) **गर्भाषय में मवाद :**

यह गर्भाशय का एक सक्रं मण है जिसमें बड़ी मात्रा में मवाद जमा हो जाती है। यह खराब गर्भाशय ग्रीवा या गर्भाशय निकासी के कारण होता है। इस स्थिति का प्रबंधन गर्भाशय को हार्मोन और दवा के द्वारा निष्कासित किया जाता है। जिससे गर्भाशय सिकुड़ जाता है और खाली हो जाता है।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

पशुओं में जेर न डालने की समस्या

सुखबीर रवीश एवं रविदत्त*

मादा पशु एवं प्रसूति रोग विभाग

लाला लाजपत पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

पशुपालन कृषि का एक अभिन्न अंग होने के साथ साथ लघु एवं सीमांत किसानों की प्रमुख स्त्रोत है, परन्तु पशुओं के प्रसव के उपरांत होने वाली समस्याओं से किसानो एवं पशुपालकों को हानि की सम्भावना रहती है। इन समस्याओं में से एक मुख्य समस्या जेर का अटकना है। इस समस्या की जानकारी एवं तात्कालिक उपचार से पशुपालक को हानि से बचाव हो सकता है।

परिभाषा :

भ्रूण झिल्ली अथवा प्लेसेंटा की अवधारणा अथवा जेर का अटकना, को प्रसव के 24 घंटों के अंदर भ्रूण झिल्ली को बाहर निकलने में विफलता के रूप में परिभाषित किया गया है। रिटेंड प्लेसेंटा एक ऐसी स्थिति है, जिसमें प्रसव के तीसरे चरण की अवधि में प्लेसेंटा झिल्ली पूरा अथवा कुछ भाग गर्भाशय में रहता है। बीफ मवेशियों की तुलना में डेयरी मवेशियों में यह घटना अधिक होती है। जेर का अटकना, भात, भाग से प्लेसेंटा के भ्रूण के भाग को अलग करने में विफलता के कारण होता है। प्रायः ऐसी समस्याएँ 15–20 प्रतिशत अनुमानित है। अधिकांश गायें प्रसव के 6 घंटे के अंदर प्लेसेंटा को बाहर निकाल देती है। सामान्यतः प्लेसेंटा प्रसव के 3–8 घंटों के भीतर बाहर निकल जाती है। भ्रूण झिल्ली की अवधारणा की स्थिति का आर्थिक रूप से महत्व है, क्योंकि ऐसी परिस्थिति में दुग्ध उत्पादन में गिरावट देखी गई है। अधिक उपज देने वाले पशुओं में यह बीमारी अधिक पाई गयी है। साधारण प्रसव की तुलना में कठिन प्रसव, प्रेरित प्रसव और सी सैक्शन में घटनाएं अधिक होती है। जेर के अटकने की समस्या से पशुओं में मृत्यु दर लगभग 2 प्रतिशत अनुमानित है।

जेर के अटकने के कारण

कठिन प्रसव, गैर–संक्रमण कारणों से गर्भपात और ब्रूसेलोसिस, विब्रिओसिस, तपेदिक और मारकोटिक संक्रमण जैसे संक्रमक रोगों के कारण जेर का गिरना संभव होता है, अन्य कारणों से गर्भाशय का मरोड़, मातृ शिशु जन्म, बछड़ा जन्म, जुड़वाँ जन्म, वसा में घुलनशील विटामिन की कमी, कैल्सियम, फॉस्फोरस और मैग्निसियम की कमी शामिल है। भ्रूण झिल्ली का अवधारण के कारणों में कुपोषण, समय से पहले बच्चा होना, हॉर्मोनल असंतुलन, खनिज मिश्रण की कमी, पोषण का निम्न स्तर, झुंड का खराब प्रबंधन और प्रसव के बाद गर्भाशय का संक्रमण शामिल है।

लक्षण :

गर्भाशय से दुर्गन्धयुक्त स्त्राव के साथ बलवा से मलिनकिरण और भ्रूण झिल्ली का लटका होना मुख्यतः लक्षण है। कुछ पशुओं में प्लेसेंटा गर्भाशय में बना रहता है , जिससे प्रसव के कुछ दिनों के बाद योनि से दुर्गन्धयुक्त स्त्राव होता है। भ्रूण अवरोधन वाले पशुओं में पैमला रोग अधिक होता है, जिससे पशु के दुग्ध उत्पादन और प्रजनन दोनों के अनुपचारित मामले में गंभीर आर्थिक हानि होती है।

जटिलताएँ :

अनुपचारित जेर के अटकने से मैट्राइटिस की सम्भावना बढ़ती है। इसके कारण प्रसवोत्तर रक्तस्राव भी हो सकता है। अन्य जटिलताओं में दूध की उपज में गिरावट, लंबे समय तक प्रसवोत्तर एनोस्ट्रस अवधि, देर से गर्भाधान, अगली गर्भाशय में गर्भपात शामिल। गंभीर विशाक्त मामले में पशु की मृत्यु तक हो सकती है। जेर के अटकने की पहचान भ्रूण की अवधारणा के लक्षणों पर निर्भर करती है। प्रसव के 24 घंटे से अधिक समय होने पर भी वल्वा से प्लेसेंटा के लटकने और योनि से दुर्गन्धयुक्त स्त्राव तथा योनि परीक्षा के द्वारा भी इसकी पहचान की जा सकती है।

उपचार

अनुपचारित पशु प्लेसेंटा 2–10 दिन में गर्भाशय से बाहर निकल देता है। मैन्युअल रूप से हटाने की संस्तुत नहीं की जाती है, क्योंकि इसके कारण रक्तस्त्राव और संभावित संक्रमण की सम्भावना होती है। जटिल मामलों में

*Corresponding author: raviduttvets@yahoo.co.in

अंतगर्भाशयी और अनुभवी पशु चिकित्सक का सहयोग लेना उचित होगा। इसके उपचार में हॉर्मोनल थैरपी, कैल्शियम बोरोग्लुकोनेट भी शामिल है। कड़ी निगरानी और उचित उपचार से पशु शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ पा जाएगा।

नियंत्रण :

प्रत्येक पशु को प्रतिदिन खनिज मिश्रण एवं कैल्शियम 50 ग्राम तथा 100–150 मिलीलीटर की मात्रा से देते रहना चाहिए, लेकिन प्रसव के 4–5 सप्ताह पूर्व कैल्शियम पिलाना बंद कर देना चाहिए। प्रसव के तुरंत बाद पशु को 1 किलोग्राम गुड़ एवं गेहूं का दलिया खिलने और विटामिन–ई सेलेनियम देने से जेर के अटकने की समस्या से बचाव हो जाता है। पशु को हमेशा साफ–सुथरे एवं फिसलन रहित स्थान पर ही बांधना चाहिए। गर्भाशय की संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए, मादा पशुओं में समय–समय पर परिक्षण करना चाहिए। प्रजनन प्रणाली से सम्बंधित संक्रमण रोगों से बचने के लिए, कृत्रिम गर्भाधान अत्यधिक उपयोगी पाया जाता है। अतः पशुपालन यह उन्नत तकनीक अपनाकर अनेक समस्याओं से बचाव कर सकते हैं। डेयरी उद्योग की सफलता के लिए दुधारू पशुओं आने वाली बिमारियों से बचाव हेतु, संस्तुत प्राथमिक एवं सुधारात्मक उपचार अपनाने अति महत्वपूर्ण हैं।

FORM IV

Statement about ownership and other particulars about Pashudhan Gyan Magazine to be published in the first issue every year after the last day of February.

1. Place of publication	:	Hisar (Haryana)
2. Periodicity of its publication	:	Half Yearly
3. Printer's Name	:	Dorex Offset Printers
Nationality	:	Indian
Address	:	Satya Nagar, D.N. College Road, Behind Swastik Gas Godown, Hisar
4. Publisher's Name	:	Dr. Manoj Kumar Rose
Nationality	:	Indian
Address	:	Directorate of Extension Education, Lala Lajpat Rai University of Veterinary and Animal Sciences, Hisar-125 004 (Haryana)
5. Editor's Name	:	Dr. Davinder Singh
Nationality	:	Indian
Address	:	Directorate of Extension Education, Lala Lajpat Rai University of Veterinary and Animal Sciences, Hisar-125 004 (Haryana)

6. Names and addresses of individuals who own the newspaper

LALA LAJPAT RAI PASHU CHIKITSA EVAM PASHU VIGYAN VISHV VIDHYALAY

I, Dr. Manoj Kumar Rose hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

(Manoj Kumar Rose)

पशुओं में गर्भाधान न होने के कारण एवं बचाव

सुजाता जिनागल[1] एवं रविदत्त[2]*
मादा एवं प्रसूति रोग विभाग
लाला लाजपत पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

1. शरीर में खनिज और लवणों की कमी

इस विश्वविद्यालय द्वारा करवाए गए सर्वे में यह ज्ञात हुआ है कि हमारी भूमि में खनिज लवणों की कमी देखी गयी है। अतः ऐसी भूमि पर उगाया गया चारा भी खनिज एवं अन्य लवणों की कमी वाला प्राप्त होता है। शोध में यह भी पाया गया है कि पशुओं में फास्फोरस खनिज की कमी अति महत्व रखती हैं जिससे पशु के अण्डाशय पर अण्डा उचित प्रकार से विकसित नहीं होता है। इसका परिणाम यह होता है कि झोटी/बछिया 4–5 वर्ष आयु की होने पर भी मद में होने के लक्षण नहीं दिखाती है।

2. पशु का भार कम होना

शोध से पाया गया कि पशुओं में प्रजनन के लिए शरीर का भार 250 से 300 किलोग्राम होना चाहिए। जिन पशुओं का भार कम होता है वे या तो प्रजनन के संकेत कम दिखाती हैं, कम दिखाती हैं या गर्भ धारण नहीं करती हैं। कम भार होने से पशु की उमर तो बढ़ती रहती है लेकिन मद के लक्षण (अण्डा पूरा न बनने के कारण), कम आते हैं।

3. रोगग्रस्त शरीर से हारमोनों की उपलब्धता

जिन पशुओं के शरीर में यदि कोई रोग होता है तो तब उसका प्रभाव प्रजनन के लिए पैदा होने वाले हारमोनों पर होता है। ऐसी परिस्थितियों में ऐसा देखा गया है ये हारमोन कम मात्रा में उपलब्ध होते हैं जिस कारण पशु पूर्ण रूप से मद के लक्षण नहीं दिखाता है।

4. पशु में त्रुटिपूर्ण रखरखाव

यह देखा गया है कि जिन पशुओं को गर्मी के दिनों में आवश्यकतानुसार कई बार नहलाया जाता है तथा ठंडे वातावरण पर रखा जाता है, वे पशु गर्मियों में भी नए दूध हो जाते हैं। उचित व्यवस्था न होने पर जो पशु पेड़ के नीचे या धूप में बंधे रहते हैं जिनको ठण्डा वातावरण नहीं मिलता है वे मद के मंद लक्षण दिखाते हैं। उन पशुओं में निश्चित समय पर गर्भाधान नहीं हो पाता।

5. पशु पालक को कम जानकारी होना

पशु पालक को यदि गर्मी के लक्षणों का ज्ञान ठीक न हो तब इस कारण भी पशु गर्भ धारण करने से वंचित रह जाता है, जैसे कि कई पशुपालक अपने पशु को सांड के पास नहीं ले जाते हैं क्योंकि उनका विश्वास यह होता है कि पशु को रम्भाना चाहिए। लेकिन पशु के मद में आने के कई अन्य लक्षण होते हैं। जैसे पशु का बार–बार पेशाब करना, योनि पर हल्की सूजन, पूंछ पर चिकना पदार्थ लगना (तार अथवा बालवे देना) इत्यादि। यदि पशु इनमें से कोई भी लक्षण दिखाए तब उस भैंस को ठण्डे वातावरण में सांड से गर्भधान कराये। आधुनिक काल में पशु चिकित्सक से परामर्श पश्चात कृत्रिम गर्भाधान कराना उचित निर्णय होगा।

बचाव एवं उपचार :

1. पशु को नियमित रूप से वैज्ञानिक तथ्यों के हिसाब से खनिज मिश्रण दें।
2. कटिया एवं बछिया को अच्छी खुराक दें ताकि उसका भार 250 कि. ग्रा. से अधिक हो।
3. उपलब्ध साधनों से पशुओं में गर्मी के लक्षणों को पूर्ण जानकारी रखें। अतः जब भी पशु मद के जो भी लक्षण दिखाए तो उसे ठण्ड के उचित समय पर गर्भाधान करवाए।
4. पशु में गर्मी के लक्षण, सुबह दोपहर एवं शाम के समय देखें।
5. पशु के पेट में कीड़े न होने दें। समय समय पर डिवॉर्मिंग की दवाई देते रहे जिससे पशु की बढ़वार निरंतर बनी रहेगी।

सावधानियाँ

- नए दूध होने के समय पशु का भार बढ़ने की ओर होना चाहिए। घटते भार वाले पशु गर्भ धारण नहीं कर पाते हैं। अतः कुशल पोषण व्यवस्था पर ध्यान दे।

*Corresponding author: raviduttvets@yahoo.co.in

- अधिकतर भैंसें तार (बाल्वे) ठण्डे मौसम के समय (रात व सवेरे) देती हैं। दिन के समय तार कम दिखाई पड़ते हैं। अतः सतर्कतापूर्ण जाँच करते रहे।
- कुछ संकर नस्ल के पशुओं में नए दूध होने के एक अथवा दो दिन बाद हल्का खून आता है इसका गर्भधारण करने / न करने से कोई संबंध नहीं है।
- कुछ पशु गर्भ ठहरने के बाद भी गर्मी के लक्षण दिखाते हैं, ऐसे पशु की चिकित्सक से जांच कराएं।

नोट :

- बछिया एवं कटिया के लिए आयु के साथ खनिज लवण की मात्रा बताये। साथ ही दूध वाले पशुओं के लिए भी समझाए।
- बढ़ती आयु के साथ बछिया एवं कटिया के भार की तालिका दे।

दूध वाले पशु की संतुलित पोषण व्यवस्था बताये, जिससे भारतीय कृषि व्यवस्था में पशुपालन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अन्य क्षेत्रों की भांति पशुपालन भी राजकीय सहकारी एवं व्यक्तिगत स्तर पर वैज्ञानिक एवं पशुपालकों के आपसी समन्वय से अत्यधिक प्रगति हुई है। जिसके परिणाम से हमारा देश पिछले एक दशक से लगभग 17. 6 करोड़ टन दुग्ध उत्पादन कर, विश्व में पहले स्थान पर बना हुआ है। वर्ष 2018–19 के अनुमान से, हमारे यहाँ 19. 1 करोड़ गाय एवं 10. 9 करोड़ भैस होने पर भी प्रति पशु दुग्ध उत्पादन क्षमता का स्तर उच्च नहीं हो पा रहा है। सफल डेयरी के लिए उसके गाय एवं भैंस का समय से गर्भाधान धारण करना आवश्यक हैं, जिससे डेयरी की दुग्ध उत्पादन स्तर में गिरावट ना हो और यह व्यवसाय लाभप्रद बना रहे। पशुओं की अन्य बिमारियों के साथ–साथ नए दूध का ना होना अर्थात् बांझपन की समस्या व्यापक रूप से अनुभव की गयी है। डेयरी उद्योग के अन्य पशुओं के साथ पशुपालन एवं राजकीय विभाग का इस और विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यहां प्रमुख कारणों एवं बचाव के लिए उपचार सुझाये गए हैं।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)
3. निःशुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

whatsapp

930-000-0857

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

दुधारू पशुओं में प्रसव के उपरांत बिमारियाँ और देखभाल

प्रदीप, रविदत्त* एवं सुखबीर रावीश
मादा पशु एवं प्रसूति विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

पशुशाला में दूधारू पशुओं और कटिया एवं बछिया को बिमारियों से मुक्त रखकर, उनका स्वास्थ्य उत्तम बना रहे तथा शारीरिक वृद्धि समयनुसार होती रहे, यही सफल डेयरी उद्योग की कसोटी है। इसके लिए पशुपालक को इनके प्रबंधन एवं रखरखाव का समुचित ज्ञान होना आवश्यक है, जिसके लिए प्रत्येक जनपद में उपलब्ध कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानकों से ज्ञान अर्जित करना अति सुगम है। डेयरी से हमेशा आशानुसार नियमित आय मिलती रहे, इसके लिए दुधारु पशुओं एवं नए मादा पशुओं का निर्धारित समय पर गर्भाधान होना महत्वपूर्ण कुंजी है। साथ ही उचित देखभाल से, जच्चा एवं बच्चा का सामान्य स्वास्थ्य के साथ इस प्रक्रिय से बाहर होना आवश्यक है, जिससे आशानुसार दुग्ध उत्पादन प्राप्त किया जा सके। प्रायः कभी–कभी कई बीमारियाँ और दुर्घटनाएं देखी गई है, जो प्रसव के साथ अथवा उसके बाद होती है जैसे– गर्भाशय का झुकाव, जेर न डालना, जननांग पथ में घाव तथा पक्षाघात (अपाहिज) इत्यादि प्रायः देखे जाने वाली कुछ बीमारियाँ निम्न प्रकार है–

1) **प्रसव के बाद रक्तस्राव** : भ्रूण के घर्षण से मादा के जननांग में घाव हो सकते हैं, जिससे अत्यधिक रक्तस्राव हो सकता है। यहाँ गर्भाशय की रक्त वाहिकाओं का टूटना पूर्ण ग्रीवा फैलाव से पहले शक्ति के साथ बच्चे को खींचना, प्रसूति उपकरण तथा प्रसूति विशेषज्ञ के हाथों से बिमारियों का होना। रक्तस्राव गर्भाशय के फटने, योनिद्वार एवं गर्भाशय ग्रीवा के फटने आदि कारणों से सम्भव है।

2) **घाव** : भ्रूण का शक्ति के साथ निष्कर्षण की अवधि से मादा पशु की योनि मार्ग के किसी भी भाग में चोट लग सकती है। योनि की तुलना में गर्भाशय ग्रीवा और योनि के फटने की सम्भावना अधिक होती है। बछिया की योनि के आसपास रट्रोपेरिटोनियल वसा उसकी योनि के संक्रमण का भय रहता है। यह स्थिति बहुत कष्टदायक होती है तथा निरंतर, थकाऊ, तनाव और चिन्हित विशाक्ता का कारण बनती है। बाद में संक्रमण के कारण बच्चेदानी में मवाद (पस) भी पड़ जाती है।

3) **प्रसव की अवधि में पेरिनिअल चोटें** : प्रसव के दूसरे चरण की अवधि में गंभीर पेरिनिअल चोटें होती हैं। यह ज्यादातर प्रथम प्रसव के पशुओं में पाया जाता है और प्रायः योनि एवं पेरिनियम के ढीलेपन से जुड़ा होता है। चोट को पहली, दूसरी, तीसरी डिग्री के रेक्टोवजाइनल फिस्टुला में वर्गीकृत किया जा सकता है।

4) **गर्भाशय एवं योनि का फटना** : गर्भाशय में पलटी आना, गर्भाशय ग्रीवा का मुँह न खुलना, जुड़वाँ बच्चे के साथ गर्भाशय का फैलाव, हाइड्रोएलेंटोइस, मोनस्टर भ्रूण आदि कारणों से गर्भाशय के फटने की सम्भावना बढ़ जाती है।

5) **पेरिवैजिनल वसा का आगे बढ़ना** : अधिक वसा वाले बछियों/कटड़ियों में पेरिवैजिनल वसा के आगे बढ़ने की सम्भावना अधिक होती है। वसा को सावधानी से हटाया जाना चाहिए और फटी हुई योनि को टाँके लगवाने चाहिए।

6) **फूल अथवा शरीर दिखाना** : मादा पशु के गर्भाशय का आगे बढ़ना प्रसव के तीसरे चरण की सामान्य जटिलता है। इसके अनेक कारण है– जैसे कैल्शियम की कमी होना, ऑक्सीटोसिन अथवा अन्य हॉर्मोन्स की बिगड़ी अभिव्यक्ति, कठिन प्रसव आदि कारणों के चलते प्रसव के कुछ ही घंटों बाद फूल अथवा गर्भाशय बाहर आ जाता है। बाहर निकले हुए गर्भाशय को पोटेशियम परमैंगनेट (लाल दवाई) के पानी से अच्छी तरह धो लें और मुट्ठी से अंदर करें, याद रखें गर्भाशय को अंदर करते समय उँगलियों का प्रयोग न करे, अन्यथा गर्भाशय के फटने की सम्भावना बढ़ जाती है। बच्चेदानी को अंदर करने के उपरांत बुनर टांके लगाए जाते है, जिससे इसकी पुनावृत्ति को रोका जा सकता है। प्रतिधारण के बाद कम से कम 5 दिन तक एंटीबायोटिक और

*Corresponding author: raviduttvets@yahoo.co.in

सहायक उपचार किया जाना चाहिए।

7) **कैल्शियम की कमी हो जाना :** कैल्शियम की कमी प्रसव के उपरांत गायों में लेटने था खड़ा न हो पाने का मुख्य है। यह एक चयापचय रोग है, जो जानवर को अपाहिज, अवसाद एवं लेटने की स्थिति में ले आता है। कैल्शियम का अतः शिरा इंजेक्शन चिकित्सक से लगवाकर, पशु का उपचार किया जाना चाहिए।

8) **ऑब्टुरेटर पक्षाघात :** ऑब्टुरेटर पक्षाघात आमतौर पर बड़े बछड़ियों के प्रसव के साथ होता है, जिसमें L5–L6 की तंत्रिका जड़ों का संपीडन या ऑब्टुरेटर तंत्रिका को हानि होने पर पशु के पैर फैल जाते हैं और पशु मेंढ़क के पैर की मुद्रा के समान उठने में असमर्थ होता है।

9) **पशु में जेर का अटकना :** कठिन प्रसव, समय से पहले बच्चा होना, हॉर्मोनल असंतुलन, मृत शिशु जन्म, कैल्शियम, मैग्निसियम, फास्फोरस की कमी, संक्रमण एवं गैर संक्रमण कारणों से जेर अटक जाती है, जिससे गर्भाशय में संक्रमण, दूध के उत्पादन में गिरावट, नए दूध न होने की समस्या आदि हो सकती है।

आवश्यक देखभाल : सामान्यतः गाय एवं भैंस में प्रसव के उपरांत कुछ समस्याओं का पशुपालकों को सामना करना देखा गया है। सम्भावित बिमारियों से अवगत कराया गया है। यहाँ दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से पशुओं का इन समस्याओं से बचाव आवश्यक हो जाता है। यह इन बिमारियों से बचाव हेतु उपचार दिए गए है।

समस्या उपचार : रक्तस्त्राव यदि हम उस जगह पर बर्फ लगाकर सेक करें तो रक्त का बहना कम हो जाता है। इसके साथ–साथ हम एथैम्सिलेट (3750 mg), ट्रानेक्सैमिक एसिड (2000 mg) के इंजेक्शन लगा सकते हैं।

घाव : अगर प्रसव के दौरान कोई घाव हो जाता है तो उस घाव को साफ़ कर टांके लगाने चाहिए और लगाने के उपरांत उसकी देखभाल करनी चाहिए।

योनि का फटना : कठिन प्रसव के दौरान अगर योनि फट जाती है तो निरंतर टांके लगाकर उसे सीला जाना चाहिए।

जेर का अटकना : पशु के बियाने के 24 घंटे के अंदर–अंदर हमे ऑक्सीटोसिन इंजेक्शन लगाना चाहिए जिससे जेर के अटकने की सम्भावना कम हो जाती है। इसके अलावा अगर हम उसे रोप आउट/हिमरोप प्लस (200 उस प्रति दिन), $PGF2\alpha$ (500μg) आदि भी दे सकते हैं। यदि हम 10 उस विटामिन ई एवं सेलेनियम का इंजेक्शन मास या चमड़ी में प्रसव के एक महीने पहले दें तो जेर के अटकने की सम्भावना कम हो जाती है।

गर्भाशय निकलना : इसको साफ करने पश्चात मुट्ठी के साथ अंदर किया जाता है। इसकी पुनर्वृति को रोकने के लिए हम बुनर टांके या छींकि लगा सकते हैं। इस समस्या से पीड़ित पशु को हम कैल्शियम का अतः शिरा इंजेक्शन भी दे सकते हैं।

पक्षाघात : इस समस्या से पीड़ित पशुओं को हम नर्व टॉनिक 5000 mcg मास या नस में दे सकते हैं, साथ ही साथ हमें पीड़ित पशु को रोजाना सहारा देकर दिन में 2–3 बार खड़ा करने की कोशिश करनी चाहिए।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

प्रसव के पूर्व, दौरान एवं प्रसव के पश्चात मादा पशु का रखरखाव

प्रदीप, ज्ञान सिंह* और संदीप कुमार
पशु चिकित्सा नैदानिक परिसर, पशु चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय
लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

जैसा की पशु पालक भाइयों को पता है कि मादा गाय का नौ महीने नौ दिन और मादा भैंस का दस महीने दस दिन का गर्भकाल होता है। मादा पशु को प्रसव के कुछ दिन पहले बाकी पशुओं से अलग कर देना चाहिए। उसे अनुकूल वातावरण जैसे कि छायादार एवं हवादार स्थान पर प्रसव शेड में रखना चाहिए। मादा पशु प्रसव के लगभग 24 घंटे पहले खाना पीना कम कर देती है और बेचैन दिखाई देता है।

प्रसव के तीन चरण :

- प्रथम अवस्था में मादा पशु लगभग 10–12 घंटे का समय लेता है। इस दौरान बच्चेदानी का मुँह खुलता है जिसके उपरांत प्रथम मटिंडी योनि ग्रीवा से बाहर आती है।
- द्वितीय चरण में बच्चा योनि द्वार से बहार आता है, इस प्रक्रिया में मादा को आधे घंटे से तीन घंटे लग जाते है।
- तीसरे चरण में जेर बाहर आती है, इस अवस्था में लगभग 8–10 घंटे लग जाते हैं।

गर्भकाल के आखिरी तीन महीनों में देखभाल :

- इस काल में गर्भवती भैंस को दौड़ने या अधिक चलाने से बचाना चाहिए और चरने के लिए अधिक दूर नहीं लेकर जाना चाहिए।
- भैंस कही फिसल न जाए, तो इसलिए उस के बांधने वाली जगह पर नीचे घाँस–फूंस आदि बिछना चाहिए।
- सात महीने के गर्भ काल के बाद उसे जोहड़ में स्नान के लिए नहीं लेकर जाना चाहिए।
- गर्भवती भैंस को दूसरे अन्य पशुओं के साथ लड़ने मत दें।
- गर्भवती पशु को स्वच्छव ताजा पानी देना चाहिए।
- भैंस के आहार में एक किलोग्राम अधिक दाना देना जरूरी है, दाना एक प्रतिशत नमक रहित होना चाहिए। साथ ही साथ पशु को लगभग पच्चास ग्राम खनिज मिश्रण भी देना चाहिए।
- गर्मी के मौसम में पशु को दिन में कम से कम दो–तीन बार नहलाना चाहिए व उसे तेज धूप से बचाना चाहिए।

गर्भकाल के आखिरी महीने में प्रबंधन :

- भैंस के बियाने के दो महीने पूर्वह मे दूध निकलना बंद कर देना चाहिए, नहीं तो बच्चा कमजोर पैदा होगा और अगले ब्यांत में दूध की उत्पत्ति कम होगी और भैंस के प्रजनन की क्षमता भी कम होती है।
- भैंस को प्रसव तक दो–तीन किलो दाना प्रतिदिन देना चाहिए।
- अक्सर गर्भवती पशु में प्रसव के आसपास कब्जी जैसे लक्षण देखने को मिल सकते हैं, तो उस समय हमें पशु को तिल का तेल पिलाना चाहिए।
- प्रसव के लगभग दो महीने पहले हमें पशु का कैल्शियम बंद कर देना चाहिए और उसे Vit. E & Se का टिका लगवाना चाहिए जिससे पशु में प्रसव के उपरांत जेर के अटकने की सम्भावना कम हो जाती है।
- इस काल में गर्भवती पशु को 100–120 वर्ग फुट ढका हुआ और 180–200 वर्ग फुट खुला क्षेत्र जरूर देना चाहिए और उसे अन्य पशुओं से अलग कर देना चाहिए।
- पशु के पिछले पैरों की तरफ ऊँचाव अगले पैर नीचे होने चाहिए जिससे फूल या गर्भाशय दिखने की सम्भावना कम हो जाती है।

भैंसों में प्रसव से पूर्व के लक्षण :

- प्रसव से दो–तीन दिन पूर्व आहार लेना कम कर देता है और सुस्त हो जाता है।
- वह पशु अन्य पशुओं से अलग हो जाता है।
- पशु के योनि द्वार में ढीलापन व कुछ लसलसा पदार्थ आने लग जाता है।

*Corresponding author: vetgyansaini@gmail.com

- पशु के कुल्ले की हड्डी वाले हिस्से के पास 2–3 इंच का गड्ढा पड़ जाता है जिसे आम भाषा में पूड़े तोड़ना बोलते है।
- पशु बार–बार पेशाब करता है।
- पशु की प्रसव पीड़ा शुरू हो जाती है।

प्रसव काल में भैंस की देखभाल :

- पशु के प्रसव के समय उसके आसपास कोई शोर नहीं होना चाहिए और न ही पशु के पास अनावश्यक किसी को जाने दें।
- कुछ पशुपालक भाई बच्चे के खुर देखते ही उसे खींचने लग जाते है, जो की नहीं करना चाहिए।
- पशु को आराम से ब्याने दे, जब बच्चे के दोनों पैर और सिर दिखाई दे तब पशुपालक मादा पशु के बच्चे को आराम से खींच कर सहायता कर सकते हैं।
- प्रथम मटिंडी के आने के एक घंटे बाद तक भी अगर बच्चा बाहर न आए तो हमें पशुचिकित्सक की मदद लेनी चाहिए।
- अगर पशु कोई भी अनुचित लक्षण दिखा रहा है तो हमें बिना किसी देरी के पशु चिकित्सक को बुलाकर उसे दिखाना चाहिए।

प्रसव के बाद भैंसों की देखभाल :

- ब्याने के पश्चात हमें मादा पशु के साथ–साथ नवजात बच्चे की भी देखभाल करनी चाहिए।
- अगर बच्चे के जन्म के बाद उसे साँस लेने में दिक्कत आ रही हो तो उसे उल्टा लटका कर उसकी छाती की मालिश करनी चाहिए।
- बच्चे के बाहर आ जाने पर उसे भैंस के आगे ले जाकर उसे चाट ने देना चाहिए ताकि वह सूख जाए।
- प्रसव के बाद जननांग के बहरी भाग, कोख और पूंछ को गुनगुने पानी से साफ़ करना चाहिए जिसमे पोटेशियम पेरमेंगनेट के कुछ दाने डालने चाहिए।
- प्रसव के 1–2 घंटे बाद बच्चे को खीस पिलाना चाहिए जिसके चलते मादा पशु में ऑक्सीटोसिन हॉर्मोन का स्त्राव बढ़ जाता है, जिससे जेर जल्दी गिरने में सहायता मिलती है। दूसरा खीस बच्चे को रोग–प्रतिरोधक ऊर्जा प्रदान करता है। नवजात बच्चे के वजन का दसवां हिस्सा हमें खीस पिलाना चाहिए।
- प्रसव के बाद मादा पशु को गुड़, अजवाइन का काढ़ा बना के पिलाएं जिससे मादा पशु ऊर्जा मिलती है।
- हम मादा पशु को थोड़ा खल, दलिया एवं मेथी भी उबाल कर दे सकते हैं।
- प्रसव के 24–48 घंटे बाद ज्यादा दूध देने वाली मादा पशु में मिल्क फीवर होने की सम्भावना होती है।
- मादा पशु के चारे की मात्रा धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिए।
- प्रसव के पश्चात चोकर की मात्रा धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिए, 15–20 दिन बाद दूध की मात्रा के अनुसार दाना देना प्रारम्भ कर देना चाहिए।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

भेड़ों में कृत्रिम गर्भाधान का महत्व

तपेन्द्र कुमार[1]*, प्रमोद कुमार[1] एवं माया मेहरा[2]
[1]पशु प्रसूति एवं मादा रोग विभाग, [2]जनस्वास्थ्य विभाग, वेटेरेनरी कॉलेज, बीकानेर

पशुपालक अपनी आजीविका के लिए सदियों से भेड़ बकरी पालन के व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। भेड़–बकरी गरीब पशुपालक की गाय है। भेड़ों से अधिकाधिक उत्पादन लेने हेतु उनकी नस्ल सुधारने के लिए उत्तम आनुंवशिक वरीयता वाली भेड़ों एवं मेढ़ों की आवश्यकता होती है। सामान्यतः यह माना जाता है कि एक मेढ़ा आधे रेवड़ के बराबर होता है। रेवड़ में जितने मेमने पैदा होते हैं उनमें इस मेंढे का आधा अंश होता है। इसलिए भेड़ों की नस्ल सुधारने के लिए मेंढों का उत्तम आनुंवाशिक वरीयता वाला होना अधिक महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक गर्भाधान से नस्ल सुधार एक धीमी प्रक्रिया है। भेड़ों मे प्राकृतिक गर्भाधान से जहाँ एक बार में एक मेमना पैदा होता है वहीं कृत्रिम गर्भाधान से एक ही बार के संकलित वीर्य से 30 से 40 भेड़ों ग्याभिन कराई जा सकती है। इस प्रकार सर्वोतम मेंढे की सहायता से रेवड़ की उत्पादन क्षमता कम समय में ही बढ़ाई जा सकती है।

कृत्रिम गर्भाधान एक ऐसी प्रजनन तकनीक है जिसमें बिना नर के मादाओं का प्रजनन कराया जाता है। मेंढे के वीर्य को कृत्रिम पिचकारी की मदद से भेड़ के अन्तः जननांगों तक पहुँचाया जाता है। यह तकनीक दूधारू मवेशियों जैसे गाय, भैंस की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में कारगर सिद्ध हुई हैं। इसका मुख्य उद्देश्य अच्छी गुणवत्ता वाले नर पशु का अधिकतम उपयोग करना है। इसके अलावा कृत्रिम गर्भाधान से भेड़ों के प्रबंधन में भी सहायता मिलती है। जिससे समय की बचत की अर्थात् कम समय में सम्पूर्ण रेवड़ का प्रजनन हो सकता है। कृत्रिम गर्भाधान अपनाने से मेंढे रखने की भी आवश्यकता नहीं होती तथा बाँझपन फैलाने वाले रोगों जैसे संक्रामक ब्रुसेलोसिस, क्लेमाएडिया सक्रमण आदि को रोकथाम भी की जा सकती हैं। मेढ़ों की तुलना में गर्भाधान के लिए वीर्य को एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से ले जाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विकलांग मेंढे और यहाँ तक कि मेंढे की मृत्यु के बाद भी उसके पूर्व संचित वीर्य का प्रयोग किया जा सकता है।

हमारे देश में भेड़ों की संख्या करीब साढ़े छः करोड़ है जिसमें प्रजनन योग्य भेड़ लगभग तीन करोड़ है। भारत में भेड़–पालन मुख्यतया पारंपरिक तरीके से किया जाता है जिसमें प्राकृतिक प्रजनन करवाया जाता है। भेड़–पालन में वैज्ञानिक तौर–तरीके का इस्तेमाल नहीं करने की वजह से लगभग सभी नस्लों में उन्नत बीजू मेंढ़ों का अभाव है। तीन करोड़ भेड़ों के लिए दस लाख बीजू मेढ़ों की आवष्यकता होती है जबकि भारत में लगभग चार लाख बीजू मेंढ़े है। अतः बीजू मेंढ़ों की कमी को कृत्रिम गर्भाधान विधि से प्रजनन के द्वारा पूरा किया जा सकता है। कृत्रिम गर्भाधान एक ऐसी वैज्ञानिक तकनीक है जिससे सीमित मेंढ़ों को अधिकाधिक प्रयोग में लाया जाता है। अतः भेड़ों के तीव्र आनुवांशिक सुधार के लिए कृत्रिम गर्भाधान अति आवश्यकता है चूंकि इस वैज्ञानिक विधि से एक ही नर के वीर्य से कई मादा भेड़ों को गर्भित किया जा सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान क्या है?

कृत्रिम गर्भाधान पशुओं में प्रजनन की एक आधुनिक एवं वैज्ञानिक विधि है जिसमें उन्नत नस्ल के स्वस्थ प्रशिक्षित नर के वीर्य को कृत्रिम योनी द्वारा एकत्र करके परीक्षणोपरान्त उसे एक खास किस्म के सीमन विस्तारक से पतला करके गर्मी (मदकाल) की अवस्था में मादा पशु के गर्भास्य में उचित स्थान एवं समय पर स्वच्छतापूर्वक रखा जाता है जिससे मद में आयी हुई भेड़ें ग्याभिन हो जाती है। आजकल भारतवर्ष के अधिकांश राज्यों में गाय एवं भैंसों में कृत्रिम गर्भाधान किया जाता है जिससे नस्ल सुधार कार्यक्रम को सफल बनाया जा सके, लेकिन अभी तक भेड़ों में यह विधि उस स्तर तक विकसित नहीं हो पाई है।

कृत्रिम गर्भाधान के लाभ :

पशुओं में प्रजनन के दो तरीके है, प्राकृतिक प्रजनन और कृत्रिम गर्भाधान। कृत्रिम गर्भाधान से अनेक लाभ हैं जो निम्नलिखित है –

- कृत्रिम गर्भाधान द्वारा एक मेंढ़े से न केवल स्वयं के एक

*Corresponding author: tapendra.kumar17@gmail.com

ही रेवड़ की भेड़ों को गर्भित किया जा सकता है, बल्कि दूरस्थ गाँवों के रेवड़ों की भेड़ों को भी गर्भित किया जा सकता है, जबकि प्राकृतिक प्रजनन में एक मेंढ़े से एक गाँव के सीमित रेवड़ की भेड़ों को ही गर्भित किया जा सकता है। इस प्रकार इस विधि में उन्नत बीजू मेंढे का अधिकतम उपयोग होता है।

- कृत्रिम गर्भाधान में प्रजनन हेतु हमेशा उन्नत नस्ल के स्वस्थ प्रशिक्षित मेंढ़ों का वीर्य ही उपयोग में लाया जाता है। अतः इस विधि में नियंत्रण हमारे हाथ में होता है, जबकि प्राकृतिक गर्भाधान में इन लक्षणों पर बहुत कम नियंत्रण रहता है।
- वीर्य को एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से सफलतापूर्वक ले जाया जा सकता है, जबकि प्राकृतिक गर्भाधान में मेंढ़ों का स्थानान्तरण एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहुत कठिन होता है।
- कृत्रिम गर्भाधान द्वारा प्रजनन संबंधी बहुत सी बीमारियों जैसे ब्रूसीलोसिस, ट्राईकोमोनियोसिस, वीब्रियोसिस आदि जो प्राकृतिक प्रजनन से ज्यादा होती हैं, पर नियंत्रण रखा जा सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान की विधि :

कृत्रिम गर्भाधान की विधि को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जाता है– वीर्य संकलन, वीर्य का मूल्यांकन तथा वीर्य का तनुकरण एवं भण्डारण।

वीर्य संकलन :

वीर्य संकलन कृत्रिम योनि के द्वारा किया जाता है जिसका तापमान करीब 40 से 43 डिग्री सेल्सियस रखा जाता है। वीर्य संकलित करने के लिए मैथुन कराने के चौखटे में एक भेड़ को सीधी खड़ी कर देते है। जैसे ही मेंढ़ा भेड़ पर चढ़ता है उसके लिंग को कृत्रिम योनि की तरफ घुमा देते है और वह उसी में मैथुन करके वीर्य दे देता है। यह वीर्य कृत्रिम योनि के साथ लगे एक वीर्य सकंलन क्रमांकित कप में एकत्रित हो जाता है जिसे फिर परीक्षण हेतु प्रयोगशाला में भेज दिया जाता है।

वीर्य का मूल्यांकन :

वीर्य को गर्भाधान के काम में लाने से पूर्व उसका मूल्यांकन करना अति आवश्यक होता है। वीर्य का मूल्यांकन सामान्यतया माइक्रोस्कोप के द्वारा उसके रंग, गाढ़ापन, आयतन, शुक्राणुओं की गतिशीलता और संख्या के आधार पर किया जाता है। आवश्यकतानुसार फिर उसे तनु किया जाता है। इस तनु वीर्य को गर्भाधान से पूर्व पुनः मूल्याकंन करके इस्तेमाल किया जाता है।

वीर्य का तनुकरण एवं भण्डारण :

वीर्य के तनुकरण का मुख्य उद्देश्य उसका आयतन बढ़ाना है ताकि अधिक से अधिक मादा भेड़ों को गर्भित किया जा सके। प्राकृतिक स्खलन में वीर्य गाढ़ा होता है तथा एक स्खलन के वीर्य को पतला करके 50 से भी अधिक भेड़ों को गर्भित किया जा सकता है। वीर्य को पतला करने के लिये अनेक रासायनिक घोल उपलब्ध है जो वीर्य को भोजन एवं ऊर्जा देता है जिससे वीर्य को तनु करके सफलतापूर्वक दो से तीन दिन तक 0 से 4 डिग्री सेल्सियस पर सुरक्षित रखा जा सकता है। अब विश्व में हिमकृत वीर्य का उपयोग भी शुरू हो गया है जिससे वीर्य ग्लिसरॉल की सहायता से वर्षों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसमें वीर्य का मूल्यांकन और तनु करने के उपरान्त छोटी–छोटी ट्यूब में भरकर तरल नाईट्रोजन तापमान (–196° सेल्सियस) पर हिमकृत किया जाता है तथा उसी में उसका भण्डारण किया जाता है। आवश्यकता पड़ने या कृत्रिम गर्भाधान करने के लिए वीर्य को निकालकर 30 से 32° सेल्सियस तापमान पर तरल करके उपयोग में लिया जाता है, जिससे वीर्य का शत–प्रतिशत उपयोग होता है। इसका अतिरिक्त लाभ यह भी है की नर के मर जाने पर भी उसका वीर्य वर्षों तक भण्डारित रहता है जिसको कृत्रिम गर्भाधान के उपयोग में लिया जाता है। वीर्य को इस रूप में आसानी से बहुत अधिक दूरी तक एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से भेजा जा सकता है।

भेड़ में गर्मी (मदकाल) की पहचान :

भेड़ जब गर्मी में आती है तो वह विशिष्ट लक्षण दिखाती है जैसे एक भेड़ का दूसरी भेड़ पर चढ़ना, बार–बार पेशाब करना, जोर–जोर से चिल्लाना, पेशाब के रास्ते योनि से साफ शीशे के समान गाढ़ा स्त्राव का आना आदि। एक सफल भेड़–पालक को इन लक्षणों का ज्ञान आवश्यक होता है जिससे वह अपनी भेड़ों को सही समय पर कृत्रिम गर्भाधान करा सके। कृत्रिम गर्भाधान के बाद यदि भेड़ फिर से 17 से 19 दिन बाद गर्मी के लक्षण दिखाए तो पुनः गर्भाधान कराना चाहिए क्योंकि कुछ भेड़ एक बार में ही गर्भित हो जाती हैं और कुछ भेड़ दो–तीन बार कृत्रिम गर्भाधान कराने पर गर्भ धारण करती है। यदि भेड़ ने

गर्भधारण कर लिया है तो भेड़–पालक को संतुलित आहार देना चाहिए। यदि भेड़ ग्याभिन नहीं हुई है तो उसका शीघ्र ही उपचार शुरू किया जाना चाहिए जिससे वह गर्भधारण कर सके। गर्भधारण करने के बाद भेड़ 150 दिनों में बच्चा देती है। इसके दो तीन महीने बाद फिर भेड़–पालक को यह प्रयत्न करना चाहिए कि उसकी भेड़ गर्भाधारण कर ले, जिससे हर 8 महीने के अन्तराल पर या दो साल में तीन बार बच्चे देकर भेड़–पालक के लिए एक लाभप्रद व्यवसाय सिद्ध हो सके।

कृत्रिम गर्भाधान कब करायें?

कृत्रिम गर्भाधान कराने के लिए यह आवश्यक है कि भेड़ गर्मी (मदकाल) में हो, गर्मी का तात्पर्य उस मानसिक अवस्था से है जब वह गर्भित होना चाहती है। सामान्य अवस्था में भेड़ वयस्क होने के उपरान्त और गर्भित नहीं होने पर वह प्रजनन काल में (फरवरी से अप्रैल तथा अगस्त से अक्टूबर) हर 17–19 दिन के बाद गर्मी में आती है और वह करीब 24–36 घण्टे तक मदकाल की अवस्था में रहती है। यदि मादा भेड़ को मदकाल में नर भेड़ से मिलवाया जाये या कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर ले जा कर कृत्रिम गर्भाधान करवाया जाये तभी उसमें गर्भधारण करने की संभावना होती है। जब मदकाल का समय निकल जाता है तब बच्चेदानी या गर्भास्य का मुँह बन्द हो जाता है जिससे उसमें शुक्राणु प्रवेश नहीं कर पाते और गर्भ धारण करने की संभावना खत्म हो जाती है। इसलिये यह आवश्यकता है कि यदि भेड़ सुबह गर्मी में आई हो तो उसे शाम तक और यदि भेड़ शाम या रात को गर्मी में दिखाई दे तो उसे अगले दिन सुबह तक कृत्रिम गर्भाधान करवाना चाहिए। प्रायः यह देखा गया है कि किसान भेड़ को गर्मी में देखने के दो तीन दिन बाद गर्भाधान के लिये पशु अस्पताल या कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर ले जाते है, इससे उनको नुकसान उठाना पड़ता है, क्योंकि वह समय भेड़ को गर्भित करवाने का सही समय नहीं होता है। यदि उन्नतशील किसान या भेड़–पालक कृत्रिम गर्भाधान की उपयोगिता को समझने लगेंगे तो पशु प्रजनन की इस वैज्ञानिक विधि की लोकप्रियता दिन प्रतिदिन बढ़ेती रहेगी।

ध्यान रखने योग्य कुछ बातें :

- भेड़–पालक अपनी भेड़ों का सम्पूर्ण प्रजनन रिकार्ड रखें।
- युवा भेड़ों का गर्भाधान तब तक न करायें जब तक उनके प्रजनन अंग पूर्ण विकसित न हो जाये जो कि लगभग 9–12 महीने की आयु पर विकसित होते है।
- दो ब्यातों के बीच भेड़ को 2–3 महीने का आराम दें ताकि प्रजनन अंग पूरी तरह से वापस स्वस्थ अवस्था में लौट जायें।
- मद की पहचान के लिए मादा भेड़ का नर की सहायता से नजदीकी निरीक्षण करते रहें।
- कृत्रिम गर्भाधान सही समय पर सही तकनीक एवं अच्छे वीर्य द्वारा कुशल विशेषज्ञ से करायें।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

डेयरी फार्मिंग को फायदेमंद बनाने के लिए आवश्यक है कि पशु हर साल ब्याए

सुजॉय खन्ना* एवं अनीता गांगुली

हरियाणा पशु विज्ञान केंद्र, करनाल

लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

डेयरी फार्मिंग कृषि का एक अभिन्न अंग है जिससे पशुपालकों की आमदनी बढ़ाने के लिए सबसे आशाजनक तौर पर देखा जाता है। आज डेयरी फार्मिंग को फायदेमंद बनाने के लिए और किसान को पशुपालन को व्यवसाय की तरह अपनाने के लिए आवश्यक है की सिर्फ अच्छी नसल के पशु और उनके आवास/बाड़े के अलावा पशुपालक ऐसे कदम उठाये कि डेयरी पशु हर वर्ष एक नवजात को जन्म दें। वयस्क पशु गर्मी में आने पर और गर्भधारण न करने पर लगभग 21 दिन के अंतर पर पुनः गर्मी में आता है। तीन बार गर्भाधान कराने के बाद भी यदि गर्भ नहीं ठहरता है तो पशु का इलाज भी प्रशिक्षित पशुचिकित्सक से करना चाहिये। ज्यादातर पशुपालक इस समस्या का सामना करते हैं और आर्थिक नुक्सान भी उठाते हैं। पशु हर वर्ष ब्याये इसके लिए कुछ सामान्य बातों को ध्यान रखें पशुपालक।

संतुलित आहार– अक्सर खुराक में जरूरी तत्वों की कमी से मादा पशु सही समय पर गर्मी मे अथवा गर्भ धारण नहीं कर पाती। इसलिए मादा पशु से समय पर बच्चा लेने हेतु शुरू से ही संतुलित आहार पर ध्यान दें। पशुओं की आयु अथवा दूध उत्पादन क्षमता के अनुसार आहार विशेषज्ञों के परामर्श से तैयार करे। इसके समाधान के लिए पशु चिकित्सक की सलाह भी ले। इसके इलावा पशु को रोजाना नियमित रूप से 50 से 60 ग्राम और छोटे पशुओं को 20 से 30 ग्राम खनिज मिश्रण जरूर दे। इससे पशुओं के खान–पान की कमियाँ पूरी होगी व जो खनिज उस क्षेत्र में कम है। उनकी भी आपूर्ति होगी और पशु सही समय पर गर्मी अथवा गर्भ धारण की संभावनाएं बढेंगी।

नियमित तौर से पेट के कीड़ों का निधान– पेट के कीड़ों के कारण पशु की उत्पादन अथवा प्रजनन क्षमता कम हो जाती है। इसलिए हर 3 से 4 महीने के अन्तर में पशुओं को पेट के कीड़ों से मुक्त करने की दवा नियमित रूप से दें। ध्यान रखें की यह दवा 2 हफ्तों बाद दोबारा भी देनी जरूरी है। इन दवाओं के इस्तेमाल मे भी पशु–चिकित्सक से परामर्श अवश्य लें। पेट मे कीड़े होने पर उत्पादन क्षमता कम होती है, प्रजनन पर असर होता है भोजन–उत्पादन अनुपात बढ़ता है।

कृत्रिम गर्भाधान– अधिक दूध उत्पादन हेतु पशुओं के वंश का सुधार जरूरी है। इसलिए गाय/भैंसों को कृत्रिम गर्भाधान अथवा प्रमाणित अच्छी नस्ल के सांड/छोटे से उचित समय पर गर्भाधान करवाएँ। ध्यान रहे कृत्रिम गर्भाधान सदैव पशु–चिकित्सक/अन्य प्रशिक्षित व्यक्ति से ही करवाएँ। वीर्य में खराबी और ख़राब तकनीकी के कारण भी कई बार पशु गर्भ धारण नहीं करता। कृत्रिम गर्भाधान से एक ओर हम अपने फार्म की नस्ल सुधार करते हैं तो दूसरी ओर साथ–साथ हम सम्पूर्ण पशुधन विकास में भी अपना योगदान दे सकते हैं।

रिकार्ड रखना– रिकार्ड रखना कामयाब डेयरी फार्मिंग का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इन्हीं से हमें अपनी लागत/मुनाफे का फार्म की गतिविधियों का व उनके समय का आदि पता चलता है। हमें फार्म पर सभी पशुओं का सम्पूर्ण लेखा–जोखा रखना चाहिए जैसे कि उसके जन्म का स्त्रोत या माता–पिता का, नम्बर/पहचान चिन्ह का, खान–पान का, टीकाकरण का, कीड़े मारने की दवाई का समय, गर्मी में आने का, कृत्रिम गर्भाधारण का, ब्याने का, खनिज मिश्रण का ब्यौरा इत्यादि।

इसके अलावा अगर पशु ब्यांत के बाद करीब अगर 40 से 60 दिनों तक गर्मी में नहीं आता या मूक गर्मी (साईलेंट हीट) दिखाए जिसमें गर्मी का पता न लगे तो तुरंत पशुचिकित्सक को संपर्क करें।

*Corresponding author: joykhanna20@gmail.com

डेयरी पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान

सुजॉय खन्ना* एवं अनीता गांगुली
हरियाणा पशु विज्ञान केंद्र, करनाल
लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

डेयरी पशुओं के नस्ल सुधार के लिए प्रजनन योग्य पशुओं को गर्भित करवाने के लिये कृत्रिम गर्भाधान तकनीक को प्राथमिकता देनी चाहिए। अति उत्तम प्रजाति के सांड के वीर्य से पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान करवाने से नस्ल सुधार होता है एवं प्राकृतिक संभोग से होने वाली बीमारियाँ भी नहीं फैलती है।

कृत्रिम गर्भाधान के लाभः

- पशुओं की नस्ल में तेजी से सुधार होता है।
- कृत्रिम गर्भाधान से प्रजनन सम्बन्धी बीमारियों को फैलने से रोका जा सकता है।
- कृत्रिम गर्भाधान कराते समय जननांगों की बीमारियों का भी पता लग जाता है।
- यह तकनीक प्राकृतिक संभोग के मुकाबले सस्ती भी है।
- जब गाय/भैंस गर्मी में होती है, तब सांड को तलाशने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

कृत्रिम गर्भाधान का सही लाभ उठाने के लिए पशुपालकों को पशुओं के गर्मी में आने के निम्नलिखित लक्षण का ध्यान रखना चाहिए :

- पशु का बार–बार रंभाना।
- पशु का पूंछ उठाना।
- प्रजनन अंगों में सूजन और अधिक रक्त प्रवाह के कारण गुलाबी–लाल रंग।
- पशु का बार–बार पेशाब करना।
- पशु की खुराक व दूध का कम होना।
- पशु का बेचैन होना, दूसरे पशुओं को सूंघना व उन पर चढ़ना।
- प्रजनन अंगों से गाड़े, चिपचिपे व पारदर्शी द्रव का निकलना।

पशुपालकों द्वारा ध्यान रखने वाली बातें :

- गर्मी में आने के 12 से 14 घंटे बाद ही कृत्रिम गर्भाधान या प्राकृतिक गर्भाधान कराना चाहिये। यदि पशु गाभिन नहीं हुआ है तो वह 21 दिन बाद पुनः गर्मी में आयेगा।
- गाय अथवा भैंस के गर्मी में आने पर इसकी सूचना नजदीकी पशु अस्पताल या निकटतम कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता को देनी चाहिये।
- पशु लगभग 21 दिन के अंतर पर पुनः गर्मी में आता है। अतः 21 दिन बाद गर्मी के लक्षणों का फिर से निरीक्षण करना चाहिये, विशेषतः सुबह और शाम के समय।
- भैसों में विशेष ध्यान देना चाहिये क्योंकि उन में गर्मी के लक्षण अधिक स्पष्ट नहीं होते है।
- पशु को कृत्रिम गर्भाधान कराने के 21 दिन बाद गर्मी के लक्षणों का पुनः निरीक्षण करना चाहिये।
- कृत्रिम गर्भाधान कराने के 90 दिन बाद गर्भ परीक्षण भी करवाना चाहिये।
- तीन बार गर्भाधान कराने के बाद भी यदि गर्भ नहीं ठहरता है तो पशु चिकित्सक से इलाज हेतु सम्पर्क करना चाहिये।

गाय एवं भैंसों में कृत्रिम गर्भाधान से अधिकतम लाभ के लिए ध्यान रहे :

- भैंसों में मुर्रा सांड के वीर्य से ही कृत्रिम गर्भाधान करवाना चाहिये।
- देसी गायों में उन्हीं की नस्ल के सांड के वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान करवाना चाहिये। इससे हरियाणा में पायी जाने वाली गायों जैसे की हरियाणा, थारपारकर, साहीवाल, गिर, बेलाही आदि का नस्ल संरक्षण किया जा सकता है।
- बिना नस्ल की कम उत्पादन वाली गायों में अच्छी विदेशी नस्ल के सांड के वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान करवाना चाहिये। इससे उत्पन्न वत्स में विदेशी एवं देसी रक्त का प्रतिशत 50–50 रहता है जिससे कि उसकी उत्पादन क्षमता अधिक होती है एवं स्थानीय वातावरण के प्रति सहनशीलता भी अधिक रहती है।
- अधिक दूध देने वाली बिना नस्ल के गायों का देसी गायों के सांड के वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान करवाना चाहिये।
- संकर नस्ल की गायों में संकर नस्ल के सांड के वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान करवाना चाहिये। इससे उत्पन्न वत्स में विदेशी एवं देसी रक्त का प्रतिशत 50–50 रहता है। उदाहरण के लिये यदि पशुपालक के पास संकर नस्ल की जर्सी या हफ गाय है तो कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता से इसको संकर नस्ल के जर्सी या हफ सांड के वीर्य से गर्भित करवाना चाहिये।

*Corresponding author: joykhanna20@gmail.com

भैंसों में फास्फोरस की कमी के कारण गठिया बाय रोग

गौरी चंद्रात्रे*
पशु विज्ञान केंद्र, सोनीपत
लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

गठिया बाय रोग मुख्यतया भैंसों में होता है। इस रोग में पशु पीछे की टाँगों से लंगड़ाकर चलता है व झटके से टांग उठाता है। पेशाब में कई बार हीमोग्लोबिन के अंश आते हैं। यह रोग मुख्य रूप से चारे दाने में फास्फोरस की कमी से होता है। पशुओं के शरीर में फास्फोरस की कमी या शरीर द्वारा सही मात्रा में उपयोग नहीं होने पर फास्फोरस की कमी हो जाती है। लगभग 70 प्रतिशत फास्फोरस का उपयोग हड्डी और दांत बनने के लिए कैल्शियम के साथ होता है। फास्फोरस की कम मात्रा से उत्पन्न होने वाले रोग को हाइपोफॉस्फेटीमिया कहा जाता है, वहीं अत्याधिक मात्रा में फास्फोरस को हाइपरफॉस्फेटीमिया कहते हैं। फास्फोरस की कमी के कारण हड्डियों का रोग (रिकेट्स) हो सकता है। इसके अलावा फास्फोरस एवं कैल्शियम तत्व के संतुलन से पशुओं में ऑस्टियोपोरोसिस रोग हो जाता है।

कारण : चारे दाने मे फास्फोरस की कमी इस रोग का मुख्य कारण होता है। आजकल अधिक गेहूं की पैदावार लेने के लिए किसान यूरिया खाद का प्रयोग ज्यादा करते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप जमीन में फास्फोरस की कमी हो गयी है। यह कमी सभी चारों व अनाजों में भी रहती है जिससे पशुओं में भी फास्फोरस कम हो जाता है। जो इस रोग का कारण बनता है। अगर पशु आहार मिश्रण में चोकर नहीं मिलाया जाता तो भी फास्फोरस की कमी हो सकती है।

रोग व्यापकता : यह रोग मुख्य रूप से भैंसों में देखा गया है। वैसे यह गायों मे भी हो सकता है। जहाँ–जहाँ मिट्टी में फास्फोरस तत्व की कमी पायी जाती है, उन सभी स्थानों पर इस रोग के होने की आशंका रहती है। प्रायः रूप यह रोग हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों मे देखा गया है क्योंकि यहा पर फसलों में यूरिया का बहुत ज्यादा प्रयोग हुआ है। फलस्वरूप जमीन मे फास्फोरस की कमी हो गयी है। इस रोग से प्राय रूप बड़े पशु ही प्रभावित होते देखे गये हैं।

लक्षण : गठिया या रुमेटिज्म लाइक सिन्ड्रोम में पशु पिछली टांगों से लंगड़ाकर चलता है। चलते समय पिछली टांग को झटकाकर आगे बढ़ाता है। चलने तथा उठने बैठने में प्रभावित पशु को दर्द होता है। इससे पशु के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। विशेष रूप से भैंसें जो भार ढोने के काम आते हैं। मगर पिछली टाँगों में लंगड़ाहट की वजह से वे कार्य को सही नहीं कर पाते। पशुओं की बढ़वार कम हो जाएगी और दूध देने की क्षमता में भी कमी आएगी। फास्फोरस की कमी होने पर पशु की प्रजनन क्षमता प्रभावित होती है। जिससे पशु हीट में नहीं आता है।

विकृति : इस रोग से मृत्यु नहीं होती मगर उत्पादन पर काफी असर पड़ता है। विकृति में यदा–कदा जोड़ों की सूजन या ऐंठन देखने को मिलती है। कभी–कभी प्रभावित टांग सूखने लगती हैं। लंगड़ाहट के कारण यदि पशु गिर जाय तो चोट आ जाती है। यदि प्रभावित पशु के रक्त के नमूने परीक्षण किये जायें तो उनमें फोस्फोरस की कमी मिलती है। साथ में लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या भी कम होती है।

निदान : इस रोग की पहचान लक्षण से की जाती है। प्रभावित पशु पिछली टाँगों से लंगड़ाकर चलता है तथा पूर्ण निदान के लिए पशु के रक्त की जांच फास्फोरस के लिए की जाती है जो इनमें कम मिलता है। यदि उस क्षेत्र की मिट्टी, हरे चारे व दाने की भी फास्फोरस के लिए जांच की जाए तो उनमे भी फास्फोरस का स्तर काफी कम मिलता है।

उपचार : इस रोग का उपचार बहुत ही सरल है। प्रभावित पशु को मिनरल मिक्चर देना चाहिए। पशु को सोडियम ऐसिड फास्फेट के टीके लगाने से लक्षण तुरन्त दूर हो जाते हैं। रोगी पशु को तत्काल आराम आ जाता है। दीर्घकालीन चिकित्सा के दाने में मिनरल मिक्चर अवश्य मिलाते रहना चाहिए।

बचाव व रोकथाम : रोग से बचाव के लिए अपने पशुओं को मिनरल मिक्चर दाने के साथ हमेशा देते रहें। यह रोग न हो इसके लिए फसलों में फास्फेट युक्त रसायनिक या प्राकृतिक खादों का प्रयोग करना चाहिए ताकि जमीन में ही फास्फोरस तत्व की कमी न हो व पशुओं में यह रोग न हो। पशुओं को बहुत अधिक मात्रा में कैल्शियम देने पर भी फास्फोरस की कमी हो जाती है, इसलिए पशुओं को केवल कैल्शियम ही न दें।

*Corresponding author: drgaurichandratre@gmail.com

मिलावटी (अपमिश्रित) दूध के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव

रेखा दहिया[1] एवं राजेन्द्र सिंह[2]*
[1]पशु विज्ञान केन्द्र, पलवल, [2]पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक
लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

भारत दूध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है। भारत का कुल दूध उत्पादन 221.06 मिलियन टन तथा प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता 444 ग्राम है। भारत में अधिकतर लोग शाकाहारी है। दूध को प्राचीन काल से ही एक उत्तम एवं संपूर्ण आहार माना गया है। दूध शरीर की प्रोटीन, वसा, विटामिन और खनिज जैसे पोषक तत्वों की आपूर्ति करता है।

भारत के दूध उद्योग में उत्पादक, वितरक और उपभोक्ता ये तीनों प्रमुख भूमिका निभाते हैं। दूध उत्पादन दूर–दराज ग्रामीण इलाकों में अधिक होता है और दूध की खपत तथा माँग शहरी इलाकों में होती है। दूधिए गांवों से शहर दूध पहुँचाने में अहम भूमिका निभाते हैं। दूधिए पानी के अलावा, 50 प्रतिशत दूध को वसा रहित करके सस्ते दामों में दूध बेच देते हैं। गर्मियों में उपभोक्ताओं की माँग उतनी ही बनी रहती है परन्तु दूध उत्पादन सर्दियों की अपेक्षा कम हो जाता है। दूधिए माँग को पूरा करने के लिए स्टार्च, चीनी, मीठा सोडा, यूरिया, अमोनियम सल्फेट, ग्लूकोज, नमक और फॉरमलिन आदि मिलाकर लाभ कमाते हैं। कृत्रिम दूध में कास्टिक सोडा, यूरिया, हाइड्रोजन परऑक्साइड, फॉरमलिन आदि मिलाकर बनाया जाता है जो प्राकृतिक दूध जैसा दिखता है परन्तु पोषण नहीं होते हैं। एफ.एस.एस.ए.आई. (FSSAI) 2011 के अनुसार दूध में पानी की मिलावट सबसे आम है। एफ.एस.एस.ए.आई. (FSSAI) 2012 के राष्ट्रीय सर्वेक्षण में दूध के 68 प्रतिशत नमूनों में मिलावट पाई गई जिनमें 31 प्रतिशत नमूने ग्रामीण क्षेत्रों से थे। 16.7 प्रतिशत पैकिट या ब्रांडेड दूध के तथा बाकी डेयरियों के खुले दूध के नमूने थे। शहरी क्षेत्रों 68.9 प्रतिशत दूध में पानी, डिटर्जेंट, यूरिया और स्किम मिल्क पाउडर की मिलावट पाई गई। चीन में शिशु दूध उत्पादों में मेलामाइन की मिलावट के बाद दूध में मिलावट वैश्विक चिन्ता का विषय बन गया। पर्याप्त कानून प्रवर्तन, निगरानी का अभाव, उचित जागरूकता की कमी और सही जाँच तकनीक की कमी के कारण मिलावट की जाँच का पता नहीं लगाया जा सकता है। माँग और आपूर्ति के अन्तर, दूध की खराब होने वाली प्रकृति और ग्राहक की कम क्रय क्षमता के कारण दूध में मिलावट प्रायः देखी जाती है।

मिलावटी (अपमिश्रित) दूध का मनुष्यों के स्वास्थ्य पर प्रभावः

1. **पानी** : दूध में 87 प्रतिशत पानी प्रमुख एवं प्राकृतिक रूप से होता है। दूध में पानी की मिलावट सबसे सस्ता और आसान तरीका है लेकिन अगर दूध मे दूषित पानी मिला दिया जाये तो उपभोक्ता के स्वास्थ्य के लिए गंभीर चिंता का विषय है।
2. **स्टार्च** : स्टार्च का उपयोग सोलिड नॉट फैट (एस. एन.एफ.) को बढ़ाने के लिए किया जाता है। दूध में स्टार्च की मिलावट अधिक होने से दस्त हो सकते हैं तथा शरीर में स्टार्च का संचय मधुमेह रोगियों के लिए बहुत घातक हो सकता है।
3. **चीनी** : इसकी मिलावट ठोस पदार्थ व लैक्टोमीटर रीडिंग बढ़ाने के लिए किया जाता है जो पहले से पानी की मिलावट से पतला हो गया है। चीनी की मिलावट रोज–रोज व ज्यादा मात्रा में होने पर रक्तचाप को प्रभावित करती है, मस्तिष्क को लकवा मार सकता है, सफेद कोशिकाओं की मात्रा घट सकती है। निद्रा, विचार करने तथा याद रखने की क्षमता को खत्म कर सकती है।
4. **नमक** : पानी मिलाने के बाद दूध के घनत्व की भरपाई के लिए नमक मिलाया जाता है। नमक युक्त दूध धमनियों में रूकावट पैदा कर सकता है। हृदय की समस्या, एसिड बेस बैलेंस तथा रक्त के पी.एच. को भी प्रभावित करता है।
5. **न्यूट्रलाईजर** : इसका उपयोग सिंथेटिक दूध में अम्लीय प्रभाव को बेअसर करने में किया जाता है। यह उच्च

रक्तचाप, हृदय रोगों से पीड़ित वालों के लिए जहर है तथा गर्भवती महिलाओं के लिए अधिक हानिकारक होता है।

6. **साबुन/कास्टिक सोडा** : यह कृत्रिम दूध बनाने में प्रयोग होता है। इससे अपमिश्रित दूध के पीने के दीर्घकालिक प्रभाव जैसे रसौली, कैंसर, जीन व गुणसूत्रों में बदलाव, गर्भपात, पीलिया, लकवा, शारीरिक व मानसिक बीमारी, प्रजनन असमर्थता, दमा और गुर्दे का खराब होना प्रमुख है।

7. **यूरिया और अमोनियम सल्फेट** : यह प्रायः कृत्रिम दूध बनाने में तथा एस.एन.एफ. के मूल्यों को बढ़ाने के लिए होता है। गले और छाती में जलन संवेदन, खाँसी, दमा, आँखों का लाल होना, सिरदर्द, उल्टी आदि यूरिया और अमोनियम सल्फेट के अपमिश्रित दूध के पीने के कुप्रभाव है।

8. **फॉरमलिन और हाइड्रोजन परऑक्साइड** : ये विषाक्त पदार्थ है तथा दूध के नमूनों को लम्बे समय तक परिरक्षित करने के लिए इनका उपयोग होता है। फॉरमलिन की विषाक्ता से रसौली, नाक, गले और फेफड़ों में जलन होती है। फॉरमलिन की अधिक मात्रा कैंसर तथा लम्बी अवधि की अचेतन अवस्था पैदा कर सकती है। हाइड्रोजन पर ऑक्साइड की मिलावट से आँखों, चमड़ी, श्लेष्मल झिल्ली में जलन, चमड़ी छाले, आँत व गुर्दों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

9. **परिरक्षक (Preservative)** : सूक्ष्म जीवों के विकास से दूध खराब हो जाता है। परिरक्षक जैसे सैलिसिलिक एसिड, बेंजोइक एसिड, बोरिक एसिड और सोडियम बाइकार्बोनेट आदि को दूध में मिलाकर लम्बे समय तक संरक्षित कर सकते हैं परन्तु इसका जहरीला प्रभाव होता है जिससे पेट में दर्द, दस्त, उल्टी, विष सम्बन्धित लक्षण और मृत्यु भी हो सकती है।

10. **कीटनाशक** : कीटनाशकों का उपयोग दूध में मौजूद सूक्ष्म जीवों को मारने तथा इनके विकास को रोकने के लिए किया जाता है परन्तु विषाक्ता और कार्सिनोजेनेसिटी के कारण गम्भीर स्वास्थ्य खतरे हो सकते हैं।

11. **कृत्रिम दूध** : कृत्रिम दूध चीनी, नमक, तेल, सिंघाड़े का आटा और यूरिया आदि से तैयार किया जाता है। कृत्रिम दूध के लम्बे समय तक सेवन करने से हाथों व पैरों में सूजन, हृदय सम्बन्धी रोग, स्नायु रोग, गुर्दे और यकृत जिगर का कैंसर, उदर में दर्द तथा शरीर का तापमान सामान्य से बहुत कम हो जाना आदि लक्षण पाए जाते हैं।

12. **गैर दूध प्रोटीन पाउडर** : सोया, मटर, घुलनशील गेहूँ प्रोटीन और रेनेट मटटा पाउडर आदि की मिलावट दूध एवं दूध पदार्थों में आर्थिक लाभ के लिए की जाती है।

13. **कम मूल्य दुग्ध वसा** : कभी–कभी दूध वसा को अन्य स्त्रोतों से बदल दिया जाता है चूंकि दूध वसा बहुत महँगा डेरी उत्पाद है। इसलिए दूध व डेरी उत्पादों के कुछ निर्माता अत्यधिक आय कमाने के लिए दूध की वसा हटा देते है इसकी भरपाई गैर दूध वसा जैसे– वनस्पति तेल, सूरजमुखी का तेल मिलाकर करते हैं जो मानव स्वास्थ्य के लिए जोखिम पैदा कर सकता है।

14. **कम मूल्य दूध** : उच्च मूल्य के दूध में कम मूल्य दूध की मिलावट की जाती है। जैसे भेड़ों एवं बकरियों का दूध, गाय व भैंसों के दूध मे अक्सर मिलाकर अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए किया जाता है, परन्तु इससे स्वास्थ्य सम्बन्धित खतरों को अच्छी तरह परिभषित नहीं किया गया है।

15. **खाद्य रंग** : मिलावटी दूध का रंग सुधारने के लिए खाद्य रंग मिलाये जाते हैं परन्तु इनका स्वास्थ्य पर खतरनाक प्रभाव पड़ता है।

दूध में मिलावट का एक बड़ा कारण वित्तीय लाभ कमाना है। दूध और दूध पदार्थों में मिलावट मानव जाति के लिए खतरनाक है क्योंकि दूध में घटिया सामग्री, खतरनाक रसायन, तालाब पानी, दूध पाउडर, चीनी, यूरिया, मेलामाइन, ग्लूकोज, डिटरजेंट आदि से की जाती है। किसी भी खाद्य पदार्थ में मिलावट का ज्ञान मानव जाति के लिए आवश्यक है। दूध उत्पादन में लापरवाही एवं मिलावट के बारे में जनता को जागरूक करना आवश्यक है। उपभोक्ता स्तर पर आसान मिलावट की पहचान विधियों के प्रयोग से इस समस्या को समाप्त किया जा सकता है।

दूधारू पशुओं में दूध उतारने, दूध बढ़ाने व दूध का फैट बढ़ाने और अच्छे पावस के लिए सर्वोत्तम औषधि

एल डी एम

एल डी एम पिलायें, पवसाने वाले टीके से छुटकारा पाएं और पूरा दूध पाएं!

देने की विधि :

100 मि.ली. सुबह 100 मि.ली. शाम को रोजाना
दूध निकालने से आधा घंटा पहले पशु को दीजिए।

उपलब्धता :
1, 3 व 10 लीटर

सभी मेडीकल स्टोर व Online Flipkart, Amazon पर उपलब्ध

AHC
Animax Health Care Pvt. Ltd.

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें
8059537000, 9869657711
www.animaxhealthcare.in

HAFED

HAFED

हैफ़ेड कैटल फीड प्लांट, रोहतक

(AN ISO 9001:2008 Certified Unit)

3 तरह का गुणवत्ता वाला पशुचारा
खिलाने से पशुओं का दूध बढ़े घणा सारा।

स्पैशल कैटल मैश

प्रीमियम पशु आहार

सुप्रीम पुसा मैश

हैफेड संतुलित पशु आहार की विशेषताएं

1. इसमें सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में है।
2. यह पाचक, स्वादिष्ट तथा पौष्टिक है।
3. इसको खिलाने से पशु की संतुष्टि होती है तथा ये स्वास्थ्यवर्धक है।
4. विभिन्न खाद्य पदार्थों को विधिवत मिश्रित किया गया है।
5. इसका खिलाना आर्थिक रूप से सस्ता है।
6. इसके अधिकृत विक्रेता हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान व हिमाचल प्रदेश के अधिकतर गांव, कस्बों व शहरों में है।

हैफेड संतुलित पशु आहार खिलाने के लाभ

पशुओं को संतुलित पशु आहार खिलाने से निम्नलिखित लाभ होते हैं-

1. हैफेड संतुलित आहार खिलाने से दुग्ध उत्पादन मात्रा में वृद्धि होती है।
2. हरे चारे की उपलब्धता न होने पर पशु का पोषण विपरीत रूप से प्रभावित नहीं होता है।
3. पशु में रोग रोधक क्षमता बढ़ाता है एवं पशु स्वस्थ रहता है।
4. पशु की प्रजनन क्षमता बढ़ाता है।
5. पशु का बच्च स्वस्थ व पूरे वजन के साथ पैदा होता है।
6. पूरी दुग्ध उत्पादन क्षमता के अनुसार कम खर्चों पर दूध का उत्पादन होता है।

महाप्रबन्धक
हैफ़ेड कैटल फीड प्लांट

नजदीक सुखपुरा चौक, रोहतक । फोन. 01262-276709, 01262-277101
ई-मेल : cfphfdrtk@hry.nic.in, cfphfdrtk@gmail.com